पृथ्वी-वल्लभ

मूल लेखक—

श्रीकन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

श्रीप्रवासीलाल वर्म्मा, मालवीय

साहित्य-सदन,

चिरगाँव (झाँसी)

१९८७

प्रथम संस्करण

मूल्य १॥)

卐

श्रीरामकिशोर गुप्त द्वारा
साहित्य प्रेस, चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित ।

श्रीकन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

मूल लेखक की प्रस्तावना

अनेक लेखकों ने मुञ्ज की कीर्ति से आकृष्ट होकर उसके विषय में बहुत कुछ लिखा है। रसिक भोज का नाम मध्यकालीन मालवा की कविता में अमर है, पर उस प्रतापी देश का प्रतिनिधि मुंज भी था, ऐसा मानने के लिए कारण मिलते हैं।

मुञ्ज के यश और प्रभाव का बहुत प्रतिबिम्ब पड़ा है, समकालीन कवियों की प्रशंसा इसकी प्रबल साक्षी है। उसके समकालीन कवियों में नीचे लिखे कवियों के नाम लिये जा सकते हैं—

१—धनञ्जय, जिसने दशरूपक लिखा है, उसमें वह मुञ्ज के विषय में लिखता है—

> विष्णोः सुतेनापि धनञ्जयेन
>
> विद्वन्मनोरागनिबन्धहेतुः।
>
> आविष्कृतं मुञ्जमहीशगोष्ठी-
>
> वैदग्ध्यभाजा दशरूपमेतत् ॥

२—धनिक, जिसने संस्कृत और प्राकृत काव्य लिखे हैं और दशरूपक की अवलोक नाम्नी सुन्दर टीका लिखी है। इसे कुछ लोग धनञ्जय मानते हैं और कुछ धनञ्जय का भाई।

३—सर्वदेव का पुत्र धनपाल। इसने "पैया लच्छी' नामक प्राकृत कोष एवं बाद में जैन मतावलम्बी होकर 'ऋषभपंचाशिका' लिखी है।

४—भट हलायुध, पहले कृष्णराज के आश्रय में मान्यखेट में था, फिर मुञ्ज की सभा में आया। इसके काव्यों में अभिधानचिन्तामणि, कविरहस्य और पिंगलछन्दसूत्र की मृतसंजीवनी नाम्नी टीका लिखी है।

५—मृगांक गुप्त का पुत्र पद्मगुप्त। इसने मुञ्ज के बाद सिंहासन पर बैठने वाले सिन्धुराज के सम्बन्ध में "नवसाहसांकचरित" लिखा है—

सरस्वतीकल्पलतैककन्दम्
वन्दामहे वाक्पतिराजदेवम्।
यस्य प्रसादाद्वयमप्यनन्य-
कवीन्द्रचीर्णे पथि संचरामः॥

और भी—

दिवं यियासुर्मम वाचि मुद्रा
मदत्त यां वाक्पतिराजदेवः।
तस्यानुजन्मा कविबान्धवस्य
भिनत्ति तां सम्प्रति सिन्धुराजः॥

उपर्युक्त लेखकों की साक्षी से मुञ्ज की काव्य-रसिकता भोज की अपेक्षा किसी प्रकार कम नहीं जान पड़ती, और वह केवल रसज्ञ ही नहीं था। मालवा के परमारों में उसका स्थान साधारण नहीं है। कारण, उसके दिग्विजय की ख्याति आज तक चली आ रही है। उसने मालवा की चारों दिशाएँ प्रकम्पित कर दी थी, ऐसा मानने के भी कारण मिलते हैं। उसने सोलह बार तैलप को पराजित किया था यह बात भी ऐतिहासिक जान पड़ती है।

तैलप स्वयं महान् विजेता था। उसने मान्यखेट में साम्राज्य स्थापित किया था ऐसा प्रतीत होता है। वह चालुक्य-वंशी था, कलचुरी के लक्ष्मणराज की पुत्री बोन्थादेवी का पुत्र था, और राष्ट्रकूट भम्मह की पुत्री जक्कलादेवी उसको ब्याही थी। उसने भी चोल, चेदि, पांचाल और गुजरात देश जीत कर

अन्त में मुंज को पराजित करके मालवा पर विजय-पताका फहराई थी। उसने मुंज के साथ भार्या करके किसी प्रकार 'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर', 'परम भट्टारक', 'समस्त भुवनाश्रय', 'श्रीपृथ्वीवल्लभ', 'सत्याश्रय कुलतिलक', 'चालुक्याभरण', 'भुज-बल चक्रवर्ती', 'रणरंगभीम', इस प्रकार के अनेक बिरुद धारण किये थे।

इसके एक पुत्र का नाम 'अकलंकचरित' अथवा 'सत्याश्रय' था। स्यून देश का राजा भील्लम यादव इसका महासामंत था और इसने ही शायद मुञ्ज को पराजित किया था। इसकी स्त्री लक्ष्मीदेवी थाना के राष्ट्रकूट राजा झंझा की पुत्री थी। मृणालवती की कथा मे भी बहुत कुछ ऐतिहासिक तत्व दीख पडता है।

मुञ्ज ने जिस प्रकार अनेक उपन्यास लेखकों का ध्यान आकृष्ट किया है, उसी प्रकार मेरा ध्यान भी आकृष्ट किया। कई वर्ष पहले मैंने इस उपन्यास को लिखने का विचार किया था। अन्त में स्वर्गीय भाई हाजी मुहम्मद के आग्रह से इसे लिखना प्रारम्भ किया। खेद की बात यह है कि पुस्तक के प्रकाशित होने के पहले भाई हाजी मुहम्मद की खेदजनक मृत्यु के कारण इस पोथी को सुन्दर बनाने मे उनकी बहुमूल्य सम्मति की जो सहायता मिलती वह न मिल सकी।

बाबुलनाथ रोड,
बम्बई।
१६-२-२१

कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी।

परिचय

बंबई के प्रसिद्ध एडवोकेट एवं वर्तमान राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्यतम नेता श्रीकन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के नाम से इस समय समस्त देश परिचित है। परन्तु हिन्दी के बहुत कम पाठकों को यह अवगत होगा कि मुंशी महोदय उच्चकोटि के नाट्यकार, एवं उपन्यास लेखक हैं। गुजराती-साहित्य-मंदिर मे उन्हें एक उच्च एवं उत्कृष्ट स्थान प्राप्त है। उनकी प्रतिभाशक्ति, कला, एवं सामर्थ्य विलक्षण है। महात्मा गांधी के बाद गुजराती साहित्य में अपनी अमर लेखनी से यदि किसी ने प्राण-संचार किया है तो वह श्री मुंशी हैं। आधुनिक गुजराती साहित्य के वह सर्वश्रेष्ठ एवं शक्तिशाली उपन्यास लेखक हैं यह कहना अत्युक्ति न होगा। उनकी कई रचनाएँ सफलता पूर्वक रंग मंच पर खेली जा चुकी हैं, एवं कई उपन्यासों के फिल्म भी बन चुके हैं।

श्री मुंशी का जन्म सन् १८८७ ई० में भड़ौच में हुआ था। वहाँ उनके पिता श्रीमाणिकलाल मुंशी डिप्टी कलक्टर थे। श्री मुंशी ने चौदह वर्ष को अवस्था में मैट्रिक पास किया और सन् १९०६ में बी०ए०, १९१० में एल०एल०बी०, एवं १९१३ में बंबई हाईकोर्ट की एडवोकेट परीक्षा पास की। कुछ दिनों में ही बंबई हाईकोर्ट के प्रमुख एडवोकेटों में आपकी गणना होने लगी।

साहित्य-सेवा में प्रारम्भ से ही आपकी रुचि रही। कुछ दिन तक आपने 'भार्गव' नामक त्रैमासिक पत्र का सम्पादन

किया। आप 'नवजीवन अने सत्य' और Young India के सहकारी सम्पादक भी रह चुके हैं, जो दोनों बाद में महात्मा गांधी के सम्पादकत्व में प्रकाशित होने लगे। सन् १९२२ में आप गुजरात के प्रमुख साहित्य-सेवियों की साहित्य-संसद् नामक प्रसिद्ध संस्था के सभापति बनाये गये एवं साहित्य-संसद् के मुख पत्र 'गुजरात' का बड़ी योग्यता पूर्वक सम्पादन करते रहे। हाल ही में यह पत्र अब त्रैमासिक हो गया है।

सन् १९२६ ई० में आपने लीलावती सेठ नाम्नी एक विधवा जैन महिला से विवाह किया। श्रीमती लीलावती सेठ अपने पति के समान ही एक योग्य और विदुषी महिला हैं। गुजराती साहित्य की आप एक सुप्रसिद्ध लेखिका हैं। आपने अनेक उपन्यास, नाटक एवं छोटी कहानियाँ लिखी हैं। आप बहुत दिनों तक श्री मुंशी के साथ 'साहित्य-संसद्' की एक उत्साही सदस्या रही है। आपकी गणना गुजरात के प्रमुख साहित्य-सेवियों में होती है, और कदाचित् गुजराती भाषा की आप सर्व श्रेष्ठ स्त्री-लेखिका हैं।

श्रीमती मुंशी सभी कार्य्यों में अपने पति का पूरा साथ देती हैं। गत अप्रेल में आप श्री मुंशी के साथ सत्याग्रह आन्दोलन में सम्मिलित हुईं, और सार्वजनिक कार्यों में प्रमुख भाग लेने लगीं। बम्बई की जो इतनी प्रसिद्धि हुई है उसका बहुत कुछ श्रेय आपको ही प्राप्त है। आप बम्बई की युद्ध-परिषद् की अधिनेत्री थीं, इस कारण जुलाई के महीने में आपको जेल-यात्रा करनी पड़ी। पहली अक्टूबर को आप वहाँ से छूटकर आईं और अब आजकल आप बम्बई प्रान्त के सत्याग्रह-आन्दोलन में ख़ासा भाग ले रही हैं।

वहाँ के नेताओ मे आपको एक सर्वमान्य पद प्राप्त है।

श्री मुंशी ने विविध क्षेत्रो मे कार्य किया है। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी है। वह सच्चे देशभक्त एवं देशहितैषी हैं। असहयोग आन्दोलन के पूर्व वह होमरूल लीग के सेक्रेटरी थे। महाराज गायकवाड़ ने बड़ौदा मे एक विश्वविद्यालय स्थापित करने के उद्देश्य से जो जॉच कमेटी नियुक्त की थी आप उसके सदस्य थे। आप गुजरात के Board of Studies के चेयरमैन है। बंबई विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि के रूप में आप बंबई लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य हैं। वहाँ भी आप कई कमेटियों मे अपनी असाधारण कार्य-क्षमता एवं योग्यता का परिचय दे चुके हैं। बंबई प्रान्त में अनिवार्य व्यायाम शिक्षा का प्रचार करने के लिए बंबई सरकार की ओर से जो कमेटी नियुक्त की गई थी आप उसके चेयरमैन थे।

अप्रैल १९३० ई० मे आपने अपनी बडी वकालत छोड़ दी, और महात्मा गाँधी के सत्याग्रह आन्दोलन में सम्मिलित हो गये। नमक-सत्याग्रह के पुरस्कार में आपको ६ महीने की सज़ा हुई। पहली अक्टूबर सन् १९३० को आप जेल से छूट कर आये, और राष्ट्रीय महासभा की वर्किङ्ग कमेटी के सदस्य बनाये गये।

आपने अनेक उपन्यास, कहानियाँ एवं नाटक लिखे हैं। गुजराती भाषा में आपकी रचनाओं का बड़ा आदर एवं प्रचार है। आपकी रचनाओं की एक सामान्य और प्रमुख विशेषता यह है कि घटना-वृत्तान्त में तुरन्त ही पाठक का मन लग जाता है। वृत्तान्त के प्रबल वेग मे वह वृथा वर्णन, अनावश्यक प्रसग, पांडित्य प्रदर्शन, अथवा मन को प्रसन्न करने के लिए लम्बी लम्बी अप्रस्तुत चर्चा का कभी स्थान नही देते। यदि कहीं प्रसंगान्तर होता भी है तो

औचित्य संयम के साथ। लेखक का यह एक अपूर्व गुण है। श्री मुंशी की दूसरी विशेषता है, चरित्र चित्रण—पात्रों के चरित्र का विकास। कुशल मूर्तिकार की तरह वह अपने पात्रों की पूरी मूर्ति गढ़ देते हैं। इस कला में वह सिद्धहस्त हैं। उनकी तीसरी विशेषता है, घटना वृत्तान्त को गूँथने का चातुर्य। उनके सभी उपन्यासों का कथानक बहुत रोचक, सुसगठित, एवं सामञ्जस्य-मय होता है।

श्री मुंशी की विशेषताओं के उल्लेख के लिए यहाँ पर्याप्त स्थान नहीं। जिन्होंने मूल गुजराती में उनकी रचनाएँ पढ़ी हैं वे जानते हैं कि श्री मुंशी कैसे उच्चकोटि के कलाकार हैं। निस्संदेह वह स्काट से प्रभावित हुए जान पड़ते हैं। पर स्काट के गुणों के साथ साथ उसके दोष उनमें नहीं आने पाये। श्री मुंशी की रचनाओं के संबन्ध में इतना ही कहना अलम् होगा।

'पृथ्वी-वल्लभ' आपकी एक प्रसिद्ध रचना है और हमें इस बात का गर्व एवं हर्ष है कि हम श्री मुंशी की इस रचना को पहले पहल हिन्दी पाठकों के सम्मुख उपस्थित करने में समर्थ हो सके। 'पृथ्वी-वल्लभ' ऐतिहासिक उपन्यास है। इसका नायक है धारानगरी का प्रसिद्ध मुञ्ज। यह प्रसिद्ध दानी, विद्वान् और काव्य-रसिक राजा भोज का काका था। उसके विरुद वाक्पति-राज, अमोघवर्ष, उत्पलराज, श्रीवल्लभ और पृथ्वी-वल्लभ मिलते हैं। यह स्वयं अच्छा विद्वान् और विद्वानों का आश्रयदाता था। इसने कर्णाट, लाट, केरल और चोल के राजाओं को अधीन किया था। इसके विरुद ही इस बात के साक्षी हैं कि यह वीर और साहसी होने के अतिरिक्त रसिक और काव्य-प्रेमी भी था। एक

शब्द में उसे हम Gallant hero कह सकते है । श्री मुंशी ने रसिक अमोघवर्ष एवं वीर तथा दुस्साहसी पृथ्वी-वल्लभ का चरित्र चित्रण करने में अपूर्व कौशल का परिचय दिया है। मृणाल-वती का चरित्र भी खूब हुआ है। वह किस प्रकार पृथ्वी-वल्लभ के रूप और यौवन से आकृष्ट होकर तपस्या और संयम के उच्च सिंहासन से स्खलित होकर धीरे धीरे पाप के गर्त मे नीचे गिरती है, किस प्रकार पृथ्वी-वल्लभ को नीचा दिखाने के बदले स्वयं नीचा देखती है, और किस प्रकार अपने पाप की अग्नि में वह आप ही जल मरती है, लेखक ने इसका बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है।

हमें आशा है, हिन्दी-प्रेमी विद्वान् श्री मुंशी की इस रचना का यथोचित अभिनन्दन करेंगे ।

—प्रकाशक

श्रीगणेशायनमः

पृथ्वी-वल्लभ

विक्रम की ग्यारहवी शताब्दी का समय था। हिंदू राजाओ मे परस्पर युद्ध-विग्रह चल रहे थे। राज्यो की स्थापना और विनाश की क्रिया चल रही थी, अनेक प्रतापी नरेश, साम्राज्य स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे।

लोग, सुखी और संस्कार-शील थे। उनका जीवन सादा; पर स-चेतन था। उनका आदर्श सरल; किन्तु स-रस था।

देश अभी प्रताप से हीन नही हो गया था। उसकी संस्कृति को, आत्म-रक्षण के लिए निश्चलता स्वीकार न करनी पड़ी थी। समृद्ध और संस्कृत आर्य्यावर्त्त, स्वातन्त्र्य तथा स्वास्थ्य का आनन्द अनुभव कर रहा था।

मुहम्मद गज़नवी ने अभी देश के द्वार तोड़ने का प्रयत्न नहीं किया था। ईरान और तुर्किस्तान में उत्पन्न हुए इस्लामी

झंझावात की भयङ्कर आवाज़ भी नही सुनाई पड़ती थी। पराधीनता थी—केवल देशवासियों की; परतन्त्रता दृष्टि पड़ती थी—केवल पुरानी संस्कृति की।

इस शताब्दी के प्रतापी राजाओं मे, तैलङ्गण का चालुक्य राजा तैलप भी था। वह संवत १०२९ मे सिंहासनासीन हुआ। और, राष्ट्रकूट राजाओं को अपने अधीन कर दक्षिण मे एकच्छत्र राज्य करने लगा। इतना ही नही,—चोल, चेदि, पाञ्चाल और गुजरात में भी उसने अपनी सत्ता प्रसारित कर, भारत-भर का चक्रवर्ती होने की कल्पना की, और अपने लिए "परमेश्वर", "परमभट्टारक", "समस्त भुवनाश्रय", "सत्याश्रय कुल-तिलक", "चालुक्याभरण", "भुजबल चक्रवर्त्ती," "रणरङ्ग भीम", "आहवमल्ल," आदि पदसूचक चिह्नों का सृजन कराया।

इस चालुक्य-राज की कीर्ति पर एक बहुत बड़ा कलंक का टीका था। मालवा के मुञ्जराज ने उसे अनेक बार पराजित किया था, और पकड़ कर अवन्तिका ले जाकर एक सामान्य सामन्त की तरह उससे सेवा कराई थी। इस कलंक-कालिमा को धोने के लिये संवत् १०५२ मे तैलप ने एक बड़ी सैना लेकर तैलङ्गण पर चढ़ कर आते हुए अवन्ति-पति का सामना किया।

तैलप जब दक्षिण में साम्राज्य-स्थापन का प्रयत्न कर रहा था, तब उस समय की आर्य-संस्कृति के केन्द्र-स्थान अवन्तिका के अधिराज मुञ्जराज ने उत्तर-भारत मे साम्राज्य स्थापित किया था। वह अनेक वर्षों से सारे भारतवर्ष में

अपनी विजय-दुन्दभी बजवा रहा था। अपनी प्रशंसा करा के कवियो की शक्ति को कसौटी पर चढ़ा रहा था। रूप मे उसकी तुलना कामदेव के साथ की जाती थी। कवि-गण उसका सरस स्वर सुनकर रस-युक्त काव्य लिखने के लिए प्रेरित होते और गणित-शास्त्रीगण उसकी सहायता से शास्त्र को पूर्ण करने की चेष्टा करते थे।

रक्त-पात-प्रिय और अत्याचारी माने जाते हुए भी वह विद्या-विलासी था। उसके विषय मे अनेक दन्त-कथाएँ प्रचलित थी और तैलङ्गण मे वे सब सच समझी जाती थीं। उसका नाम सुन कर सारे देश के लोग काँप उठते थे।

पहला प्रकरण

विलासवती

सं० १०५२ के वैसाख मास की दशमी के दिन सन्ध्या-समय तैलङ्गण के राज-महल के शिवालय में एक बाला पद्मासन लगाये हुए बैठी थी।

नगर में अशान्ति थी। युद्ध में गये हुए राजा के सम्बन्ध में अनेक अफवाहें फैल रही थीं। कोई कहता, "मुञ्ज गोदावरी लाँघ कर आ रहा है," कोई कहता "तैलपराज ने मुञ्ज को पराजित कर दिया" और कोई कहता कि "मुञ्ज और तैलप दोनों द्वन्द्व युद्ध में कट मरे"। इन बातों से सच और झूठ का समझ लेना बड़ा कठिन था। परन्तु इस प्रकार की प्रत्येक नई किम्बदन्ती से लोगों में एक चिन्ता का प्रसार हो जाता।

यह सब होते हुए भी वह बाला शान्ति-पूर्वक बैठी हुई थी। वह ध्यानस्थ होने का ढंग कर रही थी; पर उसके हरिण के-से चंचल नेत्र धीर-गति से चोरों की तरह चारों ओर फिर रहे थे। थोड़ी-थोड़ी देर में वह कान देकर सुनती और हलका-सा निःश्वास छोड़ देती। ऐसा प्रतीत होने लगता मानो शंकर के समाधि-भंग की प्रतीक्षा में जगदम्बिका पार्वती पुनः नवयौवना भिल्लिनी का वेश बना कर पति की परीक्षा लेने को आई है।

इस बाला का सौन्दर्य्य अत्यन्त मनोहारी था। परिधेय वल्कल-वस्त्रों मे से निकली हुई श्वेत और सीधी—सुराहीदार गर्दन, तपस्वियों का तपोभंग करने वाली थी। वह छोटी-सी सुन्दर नाक, हल्का-सा मधुर मुख, तेजोमयी कामना-पूरित काली आँखें देख कर तपस्वी-गण भी अपने आपको भूल सकते थे। योगिराज शंकर का मन्दिर परिधेय वल्कल और लगाये हुए पद्मासन के होते भी, वातावरण मे रस-तरंगें हिलोरें ले रही थीं। यह सब कुछ होते हुए भी बाला के ललाट पर चिन्ता की हल्की-सी रेखाएं खिची हुई थीं। कमनीय काया पर ग्लानि की छाया दिखलाई दे रही थी और नेत्रों मे व्याध के भय से छिपते हुए शशक की-सी घबराहट थी।

उसने एक बार चारो ओर देखा फिर पद्मासन छोड दिया और दोनो हाथो की हल्की, छोटी तथा कोमल अँगुलियो को परस्पर मिला कर हाथों को बल-पूर्वक ऊंचा करके अंगो की अलसता दूर की।

वाटिका मे पड़े हुए सूखे पत्तो की खड़खड़ाहट हुई और किसी के आने का पद-रव सुनाई पड़ा। बाला ने तुरन्त पद्मासन जमा लिया और आँख मूंद कर ध्यान करने का ढॅग करने लगी।

तीन स्त्रियो ने शिवालय की सीढ़ियो पर पैर रक्खे। एक वल्कल-धारिणी स्त्री आगे चल रही थी। उसका शरीर ऊँचा, परिपुष्ट और सशक्त था। अंग की एक-एक रेखा पूर्ण मालूम हो रही थी। केवल सिर के केश सफेद होने लगे थे।

भरा हुआ प्रभाव-शाली चेहरा, चेचक के दागो से ज़रा विद्रूप हो गया था; किन्तु फिर भी आँखों मे तीव्र तेज था और दबे हुए दृढ़ होठो में प्रभाव था। अवस्था ढल गई थी, तो भी अंगो मे यौवन की मादकता दिखलाई पड़ती थी।

पीछे की दोनो स्त्रियाँ सुन्दरी थीं और उनके मूल्यवान वस्त्राभूषण, उनकी स्थिति का परिचय दे रहे थे।

पहली स्त्री के मुख पर दृढ़ता थी और आँखो मे स्थिर उन्माद। अन्य दोनो स्त्रियो के मुख पर भय और चिन्ता के चिन्ह थे। आँखें अश्रु-प्लावित मालूम होती थीं।

आगे की वल्कल-धारिणी स्त्री, तैलपराज की विधवा बहन, मृणालवती थी। अन्य दोनो स्त्रियो में से बड़ी तैलपराज की रानी जक्कलादेवी थी और छोटी—जक्कला देवी की चचेरी बहन, स्यून देश के यादव राजा महासामन्त भील्लम की स्त्री लक्ष्मीदेवी।

मृणालवती ने सबसे आगे मन्दिर में प्रवेश किया और लक्ष्मीदेवी की ओर मुड़ कर कहा—"लक्ष्मीदेवी, मैंने क्या कहा था? तुम्हारी पुत्री ध्यान कर रही है।"

लक्ष्मीदेवी ने अस्पष्ट भाव से कहा—"जी।"

शान्त, कठोर और सत्ता-भरे स्वर मे मृणालवती ने पुकारा—"विलास, विलास!"

विलासवती ने चौक कर आँखें खोलने का ढोंग किया। जैसे अभी ध्यान भङ्ग हुआ हो।

मृणालवती ने कठोर स्वर में कहा—"विलास, बाहर जाओ। कोई आवे, तो तुरन्त मुझे सूचित करना।"

चरण छूकर विलासवती मौन-मुख बाहर चली गई, मानो उसे मृणालवती के आदेशो का पालन और उसके इच्छानुसार व्यवहार करने की टेव पड़ी हुई हो।

विलासवती बाहर चबूतरे पर जाकर ऐसी जगह खड़ी होगई जहाँ से अन्दर की सब बातें स्पष्ट सुनाई पड़ें।

मृणालवती मन्दिर मे मूल्यवान् काले पत्थर के बने नन्दी के निकट जाकर खड़ी होगई और बोली—"जक्कला!"

जक्कलादेवी ने कहा—"जी।"

"देखो, मैने जिस स्थान के लिए कहा था, वह यही है। मान्यखेट से भाग निकलना हो, तो यही मार्ग है।"

डरते-डरते लक्ष्मीदेवी ने पूछा—"परन्तु मुञ्ज के आने का कोई समाचार...?"

मृणालवती की भौहे संकुचित हो गईं। एक तीक्ष्ण दृष्टि ने लक्ष्मीदेवी के वाक्य को पूर्ण न होने दिया।

कठोर स्वर मे मृणालवती ने कहा—"कोई समाचार होता तो मै न कहती?" लक्ष्मीदेवी होठ चबा कर चुप हो गई। मृणालवती ने आगे कहा—"देखो, इस नन्दी के नीचे सुरङ्ग है।"

धीमे स्वर मे, सम्मान के साथ जक्कलादेवी ने पूछा—"कहाँ निकलती है?"

मृणाल ने कहा—"भुवनेश्वर के मन्दिर मे।"

"वह तो बिल्कुल वन-प्रदेश मे है?"

मृणालवती उत्तर देने के पूर्व ही लौटी। गर्भद्वार मे विलास को खड़ी देख कर उसने कठोर स्वर मे पूछा—"क्यो आई है?"

"बाहर पिताजी आये हैं।"

भयंकर स्वर में मृणालवती ने पूछा—"महासामन्त ?"

लक्ष्मीदेवी के मुख से अचानक निकल गया—"ऐं !"

अशुभ लक्षण देख कर जक्कलादेवी घबरा गई। निराधार अवस्था में उसने दीवार पर हाथ टेक दिये।

"बुलाओ।"

"जो आज्ञा।" कहकर विलास बाहर चली गई और अपने पिता को अन्दर बुला लाई।

महासामन्त भील्लम ऊँचा-पूरा और शत्रुओं के हृदय में भीति उत्पन्न कर देने वाला भीमकाय योद्धा था। उसने शरीर पर कवच धारण कर रखा था। हाथ और कपाल पर पट्टियाँ बँधी हुई थीं।

"बहन मृणाल, आहवमल्ल महाराज को विजय हुई।"

जक्कलादेवी के मुख से निकल गया—"हे !"

शान्ति से सामन्त की ओर मुड़ कर मृणालवती ने आँखें चढ़ाईं और पूछा—"कब ?"

"परसों। गोदावरी लाँघ कर मुञ्ज इस ओर आना चाहता था, इसी समय महाराज ने आक्रमण कर दिया।"

जक्कला, लक्ष्मी और विलास के मुखों पर आनन्द छा गया। पर मृणालवती के होंठ भयंकर दृढ़ता से दबे रहे।

"उसकी सेना का क्या हुआ ?"

"बहुत कुछ हमारे अधीन होगई है और कुछ भाग गई"

जक्कलादेवी ने धीमे स्वर से पूछने का साहस किया—"महाराज आनन्द-पूर्वक है ?"

मृणालवती ने ज़रा कठोर स्वर मे कहा—"इतने ही मे अधीर हो गई ?" और, भील्लम से प्रश्न किया—"उस नर-पिशाच का क्या हुआ ?"

"किसका, मुञ्ज का ?"

मृणाल ने सिर हिलाकर कहा—"हॉ ।"

महासामन्त ने गर्व से हँसते हुए कहा—"उसे मैने पकड़ लिया है ।" मन ही मन महासामन्त के गर्व का तिरस्कार करती हुई मृणाल देखती रह गई । महासामन्त ने फिर कहा—"कल महाराज की सवारी यहाँ आयगी, यह कहने को मै आया हूँ ।"

"अच्छा, तो तैयारी करने का आदेश देना चाहिये । चलो, महासामन्त ।"

महासामंत का विचार वहाँ से हटने का नही था । उस ने कहा—"चलिये, मै अभी आया............"

मृणाल ने तिरस्कार से कहा—"भील्लमराज, तुम भी अभी तक ज्यो-के-त्यो बने हुए हो ? तुम्हारे हृदय मे सात्विकता नही आई । भील्लम चुपचाप ँसता रहा ।

"अच्छा, ठीक । चलो जक्कला, चलो विलास ।"

भील्लम ने कहा—"बहन, इसे मै अभी भेजे देता हूँ ।"

"तुम दोनो माँ बाप ही इस लड़की के संस्कार बिगाड़ते हो, फिर वह बेचारी क्यो कर निष्कलंक रह सकती है ? अच्छा, विलास शीघ्र आना ।" यह कह कर मृणालवती चली गई । उसके पीछे जक्कलादेवी भी थी ।

दूसरा प्रकरण ।

निराधार भील्लमराज

मृणालवती के मन्दिर से जाते ही तीनो ने एक निःश्वास छोड़ा ।

लक्ष्मी ने क्षण-भर मौन रह कर कहा—"महाराज, कैसी तवियत है ?"

भील्लम हँस पड़ा । उसकी आँखें स्नेह-सिक्त हो गईं । कहा—"बहुत अच्छी । केवल दो-चार चोटें आई हैं; परन्तु मैने आखिर विजय करके ही छोड़ा ।" हर्ष के आवेग से क्षण-भर शान्त रह कर वह फिर बोला—"यदि मै न होता, तो मुञ्ज कभी न पकड़ा जाता । और महाराज आहवमल्ल पर एक बड़ा संकट आ जाता ।"

"ओह ! ऐसा ?"

"हाँ, ऐसा । और मुञ्ज तथा महाराज के बीच घमासान युद्ध हुआ ।"

"द्वन्द्व-युद्ध ?"

"हाँ, द्वन्द्व-युद्ध । उनका हाथी और महावत मारे गये, तो उन्होने नीचे उतर कर द्वन्द्व-युद्ध किया ।"

"फिर ?"

"फिर क्या, कहाँ मुञ्ज और कहाँ महाराज ! महाराज का शरीर क्षत-विक्षत हो गया था, वे गिरने ही वाले थे, कि

मैंने देख लिया। देखते ही मैं दौड़ा, और मैंने मुञ्ज का सामना किया। देवी, क्या कहूँ उसकी बात ! चार घड़ी किसी ने दम नही लिया। अखिल त्रैलोक्य यह देख रहा था।" इतना कह कर भील्लम ने एक निःश्वास लिया। लक्ष्मी और विलास आतुरता से उसकी ओर देखने लगे।

"मेरी भी कसौटी सची थी, अन्त में मैं ही बली निकला। मुञ्जराज ने ज़रा ठोकर खाई, और मैंने धर दबाया।"

लक्ष्मी ने नयनो मे ही बलैयाँ लेते हुए कहा—"शाबाश।"

विलासवती ने धीरे से पूछा—"पिताजी, मुञ्ज कैसा है?"

"कल देख लेना। बड़ा बली है। जैसे ही मैंने उसे दबाया, तैसे ही उसने हँसकर मेरी पीठ थपथपाई और कहा—"भील्लमराज, तुम धन्य हो। जगत मे तुम ही यह कर सकते हो।"

लक्ष्मी ने कहा—"वाह, कैसा आदमी है !"

विलास ने पूछा—"पिताजी, कल मै कैसे देख सकूँगी?"

"क्यो, क्या बात है?"

लक्ष्मी के होठ मुँद गये, आँखो मे से अग्नि निकलने लगी। उसने निकट आकर धीरे से कहा—"नाथ, यहाँ तो बड़ा अत्याचार हो रहा है।"

"क्यो?"

"आप तो रण-क्षेत्र में ही अपने दिन व्यतीत करते हैं, हमारा दुःख देखने वाला यहाँ कौन है ? हमारे दुःखो की आपको क्या खबर हो सकती है ? पराधीनता ने हमें कैसा जकड़ रक्खा है ? जक्कलादेवी ही जब कुछ नहीं कर सकतीं, तो हम क्या कर सकती है ?" यह कहते-कहते लक्ष्मी का दबा हुआ क्रोध उमड़ आया। उसने आँखो के आँसू पोंछते हुए कहा—"अपने कष्टो की तो मुझे चिन्ता नहीं; परन्तु इस बेचारो विलास का जीवन व्यर्थ ही नष्ट हो रहा है।"

भील्लम ने जरा दुःखित-स्वर मे कहा—"देवो, तुम तो जानती ही हो, कि हम इस पराधीनता को क्यों सहन करते आ रहे है।"

लक्ष्मी ने आकुलता दूर करते हुए कहा—"जानती हूँ, सब जानती हूँ; परन्तु मै तो हार गई। तुम जैसे अप्रतिम योद्धा को सब कहीं इससे अच्छा काम मिल सकता है।"

एक निःश्वास लेकर महासामन्त ने लक्ष्मीदेवी को शान्त करने का प्रयत्न किया और कहा—"देवी, तुम बहुत अधीर हो जाया करती हो। अगर तुम्हे यह पराधीनता की रोटियाँ सालती है, तो क्या मुझे नहीं सालती ? मेरी गरीब प्रजा निराधार पड़ी है, और तुम महाराज की तनया—"

राष्ट्र-कूट नर-पतियो के कुल में उत्पन्न हुई लक्ष्मी ने ज़रा उलहने के ढंग में कहा—"नाथ, यह सब मैं अपने लिए कह रही हूँ ?"

भील्लमराज ने जरा विषाक्त होकर कहा—"नहीं देवी, यह बात नहीं है, मै जानता हूँ। मै स्वतः यहाँ निराधार हूँ,

गुलाम हूँ, तैलप की कीर्ति बढ़ाने के लिए नियत हुआ नौकर हूँ। परन्तु क्या किया जाय? आठ-आठ वर्षों युद्ध किया; किन्तु विधि-विडम्बना से कुछ न हो सका। अन्त में इस एकाकिनी कन्या के लिए यह अधमता—"

विलासवती दूर खड़ी हुई बड़ी कठिनता से अपनी आँखों के आँसुओं को रोकने का प्रयत्न कर रही थी। लक्ष्मी-देवी की आँखों से टप-टप आँसू गिर रहे थे। यह अवस्था देखकर—भील्लम ने एकदम बात को बदल दिया। उसने विलास की ओर मुख करके कहा—"बेटी, तू तो सुखी है?"

विलास ने धीरे से कहा—"हाँ, पिता जी।"

कटाक्ष करते हुए लक्ष्मी बोली—"यह बेचारी सुख और दुःख को क्या जाने? यह तो मृणाल बहन के अधीन है। और उन्होंने जैसे कुँवर सत्याश्रय को बना दिया है, वैसे ही इस बेचारी को बनाना शुरू किया है।"

भील्लमराज ने तनिक स्फीत हास्य करते हुए कहा—"क्यों विलास, तुम क्या विचारती हो?"

विलास ने मधुरता से कहा—"माताजी तुरन्त अकुला जाती हैं। मैं तो समझती हूँ, मुझ में अब बहुत-कुछ शान्ति आती जा रही है।"

"बेटी, तू कुँवर सत्याश्रय के योग्य हो जाय और उनके साथ तेरा विवाह कर दिया जाय, तब मुझे चैन मिले।"

"पिताजी, योग्य होने की चेष्टा तो कर रही हूँ।"

लक्ष्मी ने कहा—"हाँ, ठीक है और जब यह जवानी जल कर भस्म हो जायगी, तब तू योग्य होगी।"

भील्लमराज ने विलास से कहा—"बेटी, आज तुम्हारी माताजी ज़रा क्रुद्ध हो रही है, इनकी बातो पर ध्यान न देना। अच्छा चलो, अब हम चलें। मैने आज एक विचार किया है।"

लक्ष्मी—"क्या विचार किया है ?"

"महाराज से कुछ वर माँगूँगा। मुझे विश्वास है, मेरी सेवा देख कर वे दिये बिना न रहेंगे।"

लक्ष्मी ने फिर कटाक्ष करते हुए कहा—"निराधार स्यून-राज की आज यह दशा है !"

लक्ष्मी के इस कटाक्ष पर भील्लम ने ध्यान नही दिया। उसने आगे कहा—"विलास का विवाह हो जाय, तो हम लोग देश चलें।"

लक्ष्मी ने शंकित स्वर मे कहा—"यह सूर्य्य कब उदय होगा ?"

"होगा, तुम्हारे देखते-देखते होगा, शीघ्र होगा। अब चलो।" इसके पश्चात् तीनो ने मन्दिर मे से प्रस्थान किया।

"पिता जी, मै मुञ्ज को देखूँगी।"

"देखना बेटी, कल सवारी के समय अवश्य देखना।"

लक्ष्मी ने फिर कुछ कटाक्ष करते हुए धीरे से कहा—"यह बेचारी कहाँ देख सकेगी ? मृणाल कहेगी, कि ऐसी जिज्ञासा से तो इसका वैराग्य-व्रत टूट जायगा। उन्होने तो एक सोलह वर्ष की विधवा और कन्या को समान समझ रक्खा है।"

भोल्लम ने ज़रा कठोरता से कहा—"यह क्या कह रही हो ? कोई सुन लेगा, ध्यान है ?"

विलासवती बोली—"पिताजी, तुम मृणाल बहन से कहोगे, तो वे मान जायँगी।"

"हाँ, अवश्य कहूँगा।" यह कह कर भोल्लम मौन हो गया।

तीसरा प्रकरण ।

मृणालवती

मृणालवती जक्कलदेवी के साथ महल मे गई और कल की सवारी के लिए तैयारी करने का आदेश करने लगी ।

मृणालवती इस समय सैतालीस वर्ष की थी । तीस वर्ष पूर्व उसके पति की मृत्यु हो गई थी और वह अपना वैधव्य-जीवन व्यतीत करती आ रही थी । तैलप उससे पाँच-छः वर्ष छोटा था । माता की मृत्यु हो जाने के कारण, बड़ी बहन मृणालवती ने ही मातृ-स्नेह से उसका लालन-पालन किया था—पढ़ाया-लिखाया था । राज-काज सिखाया था और ओजस्विनी कथा-वार्त्ताएँ कह कर शूरवीर बनाया था । मृणालवती ने अपना जीवन, एक प्रकार तैलप के जीवन-संघटन में ही लगा छोड़ा था ।

वयस्क होने पर तैलप सिंहासनासीन हुआ । मृणालवती ने राज्य-कार्य्यों में अपनी बुद्धि का उपयोग करना आरम्भ किया । राज्य-कार्य्यों मे तैलप मृणालवती की तरह सुधी नहीं था । इससे कुछ ही समय में तैलङ्गण की सारी राज्यसत्ता मृणालवती को अपने हाथो मे ले लेनी पड़ी । तैलप राज्य का संचालन करता, विग्रहो का शमन करता, देश विदेशो में अपनी आन प्रसारित करता; पर मृणाल के

सामने छोटा बच्चा ही बन जाता। बहन का एक शब्द भी वह कभी नहीं टालता। बहन की प्रेरणा से राज-काज चलाता। बहन के उत्साह से समरांगण मे प्रवेश करता।

मृणालवती का स्वभाव बचपन मे बड़ा स्नेह-शील और रसिक था। ज्यों ज्यो यौवन खिलने लगा, त्यो-त्यो उसके अन्तर मे अनेक अज्ञात कामनाएँ जागरित होने लगीं। पर, कुछ तो विधवा होने के कारण दबा देनी पड़तीं, कुछ राज्यसत्ता हाथ मे होने के कारण शमित कर देनी पड़तीं, और कुछ तैलप का चरित्र शुद्ध और सरल बनाने के विचार से नष्ट कर देनी पड़तीं। परिणाम-स्वरूप, मृणालवती को वैराग्य-जीवन की आदत पड़ चली।

मृणालवती ने धीरे-धीरे अपने सुख और दुःख का अनुभव करने वाली कोमलता को सुखा डाला। आर्द्रता और करुणा को समूल उखाड़ फेंका। यह सब करने के लिए उसे भयंकर तप का स्वागत करना पडा। इस तप ने उसके हृदय को शुष्क और उसकी निश्चयात्मक बुद्धि को और भी निश्चल बना दिया।

उसका चरित्र बदलते ही संसार की ओर से भी उसका लक्ष्य-बिन्दु बदल गया। उसने सारे संसार को सुख-दुःख के कीचड़ मे लथ-पथ होते हुए देखा। उसको विश्वास होने लगा कि बिना अखण्ड वैराग्य के उसका उद्धार नहीं है। राज्य मे उसका अधिकार सर्वमान्य था; और उस अधिकार का उपयोग प्रजा के उद्धार के लिए न करना उसे बहुत बड़ा पाप मालूम हुआ। जिस प्रकार उसने अपनी

कामनाएँ वशीभूत की थीं, जिस प्रकार अपना अशान्त हृदय स्वस्थ और कठोर बनाया था, उसी प्रकार प्रजा-जीवन मे उछल रहे आनन्द, कामना और कोमलता को भी वशीभूत करने का उद्योग किया।

इस राज-नीति का अनुसरण करके उसने आदेश पर आदेश निकाले। कवियो, नटो और गायको को उसने देश से निर्वासित कर दिया। आनन्दोत्सव बन्द करा दिये। प्रकट के रोने धोने पर भी उसने अंकुश लगा दिये। नगर और महल मे कठोरता के साथ स्वस्थता का प्रसार होने लगा। सब प्रकार के संयम शुष्क, नियमित और निष्कलंक होते गये। ऐसा वातावरण बन गया कि प्रेम, उत्साह, आनन्द और उत्सव आदि बड़े अपराध समझे जाने लगे।

प्रेमी-गण प्रकट मे सहधर्माचारी बन गये। आनन्द-मग्न कुटुम्ब यन्त्र-चक्र जैसे होगये। शुष्क नियमो के कारण उत्सव-प्रसंग नीरस प्रतीत होने लगे। कवियो का स्थान तत्वज्ञानी और तपस्वियो ने ग्रहण कर लिया। नीति और नियम के उत्ताप से प्रजा-जीवन की आर्द्रता शुष्क हो गई। स्नेह, आनन्द और उत्साह का उपभोग लोग एकान्त में बैठकर, राजसत्ता से डर कर अज्ञातरीत्या करने लगे।

जब तैलपराज का पुत्र सत्याश्रय अध्ययन की अवस्था को प्राप्त हुआ तो उसकी शिक्षा का भार मृणालवती ने अपने हाथ मे ले लिया और धीरे धीरे सत्याश्रय भी अपनी बुआ के आदर्शों के अनुसार अपना चरित्र विकसित करने लगा।

इस कठोर जीवन का परिणाम बहुत ही शुभ हुआ।

तैलङ्गण का योद्धा-समुदाय कठोर, दृढ और भयङ्कर होता गया। तैलपराज ने बड़ी सरलता से दिग्विजय करना आरम्भ कर दिया। इस दिग्विजय की पहली बलि स्यून देश को होना पड़ा। भील्लमराज की टेक को उसने भंग कर दिया। युद्ध मे उसे समाप्त कर देने के लिए उसने सतत चेष्टाएँ कीं, पर भील्लमराज के जीवन की डोरी लम्बी निकली। बन्दी बनाकर वह तैलङ्गण की राजधानी मान्यखेट मे लाया गया, पर तैलप उसे मार डालने के विचारों मे सफल न हो सका। मृणाल ने उसका पक्ष ग्रहण किया और उसे नष्ट करने से बचाया; उसका राज-पाट दिलवा दिया और उसकी एक मात्र कन्या के साथ सत्याश्रय का परिणय कर देने का निश्चय कर लिया। परन्तु इस कृपा का भील्लमराज को बहुत बड़ा मूल्य देना पड़ा। उसे अपने परिवार-सहित मान्यखेट मे रहना पड़ा; तैलप का महासामन्त बन कर, उसकी कीर्ति का वर्द्धन करना पडा और विलासवती को निष्कलङ्क-जीवन का पाठ पढ़ाने के लिए मृणालवती के अधीन कर देना पड़ा।

वैराग्य का आदर्श सिद्ध करने वाली; विमल, कठोर और निश्चल नियमो को अपने और पराये जीवन मे प्रेरित करने वाली; मृणालवती तैलङ्गण की अधिष्ठात्री देवी थी। ऐसे निर्द्वन्द्व हृदय में भी एक भाव के लिए स्थान था, और वह भाव था उसके भाई की कीर्ति।

बचपन से मृणालवती ने तैलप को उत्साहित करने और साहसी बनाने के अनेक प्रयत्न किये थे और उन प्रयत्नो से तैलप ने जो कीर्ति प्राप्त की थी उसे मृणाल अपनी ही कीर्ति

समझती थी और उस कीर्त्ति के मार्ग में रोड़े अटकाने वाले को कुचल डालने के लिए वह अपनी प्रभावशालिनी निश्चयात्मिका बुद्धि का उपयोग किया करती थी।

मुञ्जराज तैलप की कीर्त्ति का राहु था। पन्द्रह-सोलह बार उसने तैलप को धूल चटाई थी, और इससे अकुलाकर तैलप ने कई बार अधीन राजाओ की तरह कर देकर, शान्ति पूर्वक राज्य-भोग करने की इच्छा की थी। परन्तु इस इच्छा के अंकुर मृणाल के निश्चल निश्चय के आगे उत्पन्न होते ही कुम्हला जाते थे। वस्तुतः, मुञ्ज और तैलप के विग्रह में, मुञ्ज और मृणाल की प्रवल इच्छाशक्तियो का दारुण द्वन्द्व चल रहा था।

अन्त में मृणाल जीती, मुञ्ज हारा। यह विचारते हुए मृणाल के शुष्क, वैराग्य-विलासी हृदय में सन्तोप और गर्व का संचार हो आया, जैसे निर्जन एकान्त मे शीतल, मन्द और मृदुल वायु का झोका आ गया हो। मुञ्ज भरत-खण्ड में पृथ्वी-वल्लभ के नाम से पुकारा जाता था। उस पृथ्वी-वल्लभ को भी मृणाल ने अपना दासानुदास बना लिया था, इससे बढ़कर सन्तोष की बात और क्या हो सकती थी?

जक्कलादेवी के साथ मृणाल जब महल को वापिस लौटी तब उसके हृदय मे इस प्रकार के विचार अस्पष्टरीत्या उत्पन्न हो आये। महल मे आकर उसने सवारी की तैयारी का आदेश किया और नगर के सामान्य नियमो को नष्ट करके किस प्रकार सवारी की धूमधाम की जाय, इसकी योजना करने के लिये नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियो को बुला भेजा।

इसी समय भील्हम, लक्ष्मीदेवी और विलास आ पहुँचे। भील्हम के मुख पर खिन्नता थी, लक्ष्मीदेवी के मुख पर अदृष्ट तिरस्कार था, विलास ज्यो-की-त्यो शान्त और मृदुल दिखलाई पड़ रही थी।

भील्हम ने पूछा—"बहन, सब तैयारी का आदेश कर चुकीं ?"

मृणाल ने ज़रा कठोरता से पूछा—"क्यो ?"

"हम पृथ्वी-वल्लभ को ले आये है, तैयारी उसके योग्य ही होनी चाहिये।"

क्षणभर के लिए मृणाल की तेजस्विनी आँखो मे तीक्ष्णता आगई। उसने कहा—"महासामन्त !......" किन्तु दूसरे ही क्षण शान्त होते हुए वह बोली—"अब पृथ्वी का वल्लभ बदल गया है।"

भील्हम ने हँसकर कहा—"तो इसकी प्रसन्नता मे भी हमे उत्सव मनाना चाहिए।"

मृणाल ने भ्रू-संकुचन करते हुए कहा—"तुम लोगो को सदैव आनन्द-उत्सव मनाने की ही पड़ी रहती है। कब तुम मे सुबुद्धि आयगी ?"

भील्हम ने साहस करके कहा—"बहन, यह प्रसङ्ग कोई साधारण प्रसङ्ग नही है।"

भील्लम की इस बात से चकित होकर मृणाल ने उसकी ओर दृष्टि उठाकर देखा। भील्हम के मुख की ओर देखकर जब मृणाल को यह अनुभव हुआ कि यह अपनी विजय पर गर्व कर रहा है, तब उसके हृदय में भील्हम के प्रति बड़ा तिरस्कार

उत्पन्न हुआ; पर उसने इस भाव को दबा कर पूछा—"क्यो ?"

"मुझ जैसा नर-रत्न पृथ्वी पर सौ वर्षों मे एक हो सकता है, हज़ार वर्षों में दृष्टि मे पड़ सकता है; परन्तु दस हज़ार वर्षों मे भी इस प्रकार पकड़े जाते नहीं देखा जा सकता ।"

तिरस्कार-भरे, शान्त, स्थिर नयनो से मृणाल यह प्रशंसा सुनती रही। फिर बोली—"तुम आज बहुत अस्वस्थ मालूम होते हो ।" मृणाल ने इस प्रकार कहा, जैसे नङ्गी तलवार हाथ से गिर कर झनझना उठी हो।

और कोई समय होता, तो भीह्लम चुप रह जाता; परन्तु अपनी विजय और लक्ष्मीदेवी के कठोर वचन उसके हृदय मे बेहद साहस उत्पन्न कर रहे थे । उसने कहा—"क्यो नही ? चौरासी योनियो मे बड़े भाग्य से ही ऐसे नर-सिंह को अकेले हाथो पराजित करने का अवसर मिल सकता है ।"

तिरस्कार पूर्ण हंसी हंसते हुए मृणाल ने कहा—"महासामन्त, यह अहं-भाव सारे पापो का मूल है ।"

सिंहनी की तरह मृणाल के इस भीषण स्वर ने भीह्लम के वीर हृदय मे भी आतंक उत्पन्न कर दिया ।

"परन्तु बहन, तुम्हे एक काम तो अवश्य करना पड़ेगा ।"

"क्या ?"

"कल सवारी देखने को अवश्य आना होगा ।"

"मै ?"

मृणाल ने इस 'मै' का उच्चारण इस प्रकार किया, जैसे

वह सामान्य मनुष्य-जाति से निकल कर किसी ऊँचे पद पर पहुँच गई हो।

"हाँ, कल का-सा प्रसङ्ग फिर अनेक जन्मो में भी नहीं उपस्थित होगा। मुञ्ज के पकड़े जाने का श्रेय तुमको है; अतएव बहन, तुमको अवश्य ही आना चाहिए।"

ज़रा हँसते हुए मृणाल ने कहा— "नयनो को संतोष देने का प्रायश्चित्त मुझे कितना करना पड़ेगा?"

"तुम अपनी जिज्ञासा को सन्तोष देने थोड़े ही आओगी? इससे तो लोगो को सन्तोष मिलेगा।"

"भील्लमराज, पाप करने और पाप कराने मे मै कोई भेद नही समझती। फिर भी मै रात को विचार करूँगी।"

"इस विलास को भी सवारी दिखाना है।"

मृणाल ने भ्रू-संकुचन करते हुए कहा—"महासामन्त, तुम इस लड़की को बिगाड़ डालोगे।"

विलास की ओर दृष्टि फेरते हुए मृणाल ज़रा कठोरता से बोली—"तूने सवारी नही देखी? सेना नहीं देखी? तैलप राज को नहीं देखा? यह सब देखने की इतनी उत्कण्ठा है?"

भील्लम ने कहा—"परन्तु यह बेचारी मुञ्ज को कब देखेगी?"

रोमाञ्च उत्पन्न करने वाले तिरस्कार-पूर्ण शब्दो में मृणाल ने कहा—"मुञ्ज मे क्या देखने का है? वही हड्डियों का पिञ्जर, वही चमड़ा, वही नरक की बनी हुई देह!"

भील्लम ने हँसते हुए कहा—"परन्तु बहन, वह

हड्डियो का पिञ्जर कुछ और ही है।"

"कैसा ?"

"उसका-सा रूप मैने कभी नहीं देखा।"

"रूप ! रूप ! क्या कह रहे हो ? सीधी और टेढ़ी नाक में क्या अन्तर ? छोटी और बड़ी आँख मे क्या भेद ? आखिर सब ही जल कर भस्म हो जायँगे। मुञ्ज मे रूप है, तो उसे जलने मे क्या कुछ विलम्ब होगा ?"

"बहन, तुम देखोगी, तो ज्ञात हो जायगा। मै कवि नहीं हूँ —"

मृणाल ने हँसते हुए कहा—"अच्छा हुआ; नहीं तो निर्वासित करना पड़ता।"

"परन्तु जो न हो, उसे भी—"

"महासामन्त, बस—"

"जो आज्ञा। परन्तु विलास—"

मृणाल के मुख पर पुनः कठोरता छा गई। उसने कहा—"विलास ! अच्छा, मै आऊँगी तो उसे भी साथ लाऊँगी, ठीक है न?" कह कर मृणाल उन्मत्त-सी वहाँ से चली गई।

भोहलमराज ने अपनी स्त्री की ओर मुड़ कर कहा— "देवी, कल विलास को सवारी देखने का अवसर मिलेगा।"

"कैसे समझ लिया ?"

"मृणाल आये विना न रहेगी।"

विलास ने पूछा—"पिता जी, मुञ्ज कवि है ?"

"कवियो का भी कवि है। सब लोग यह कहते हैं कि

उसकी सेना के साथ भी कवि है।"

लक्ष्मीदेवी का क्रोध अभी शान्त नही हुआ था। विलास ने लक्ष्मीदेवी से पूछा—"माता जी, कवियों को लोग क्यो धिक्कारते है ?"

"अपने पिता जी से पूछो। जब वे राजा थे, तब अनेक कवियो को रखा करते थे।"

भीष्म ने एक ठण्डी साँस लेते हुए कहा—"जा बेटी, मृणाल अप्रसन्न होगी। मै तुझे दिखलाऊँगा। कल बहुत आयँगे।"

विलास ने भी एक ठण्डी साँस ली और वहाँ से चली गई।

भीष्म ने लक्ष्मीदेवी को लक्ष्य करके कहा—"देवी, जले को क्यो जलाती हो ?"

लक्ष्मी ने निकट आकर भीष्म के कंधे पर हाथ रक्खा और स्नेह-पूर्वक कहा—"महाराज, यह दिखलाने के लिए कि आप पृथ्वी-वल्लभ के भी वल्लभ हो गये; तो भी पराधीन से पराधीन बने हुए है।"

"परन्तु, इस प्रकार बार-बार कहने से क्या मेरी पराधीनता कम हो जायगी ?"

"नही; परन्तु महाराज मिटकर महासामन्त नहीं रह जाओगे। इस लड़की का विवाह होजाय, फिर आपको पराधीनता छोड़ ही देनी होगी।" बहुत ही धीरे से लक्ष्मी देवी ने यह कहा और दोनो जने मौन साधे हुए वहाँ से चलने लगे।

× × ×

मृणालवती नहा-धोकर ध्यान करने के लिए बैठी; किन्तु चित्त को स्थिर करने में कुछ विलम्ब लगा। उसने अपने आप को धिक्कारा कि वह स्वयं अन्य निर्मलय प्राणियो की तरह इस विजय से अधीर एवं अस्वस्थ हो गइ। आखिर वह बड़े प्रयत्न से ध्यानाव स्थित हुई।

ध्यान कर लेने के पश्चात् वह विचार करने लगी कि कल सवारी देखने जाय, या नहीं। वह स्वयं सामान्य नर-नारियो की तरह ऐसे प्रसङ्ग पर उत्साहित होकर सवारी देखने को निकले? क्या उसे देखने का शौक़ पैदा हो गया है? थोड़ी देर बाद उसे विश्वास हो गया कि उसे केवल सवारी देखने की इच्छा नही है।

तो क्या मुञ्ज को देखने की इच्छा हो रही थी? उसके भाई के गौरव को नष्ट करने वाले शत्रु को, आर्य्यावर्त्त में अ-प्रतिम कहे जाने वाले नरेश को देखने का मन सबको हो सकता है; परन्तु उसे किस लिए हो? उसके विरागी हृदय को यह क्या हो गया है? वह हँस पड़ी। उसने ऐसी क्षुद्रता का परित्याग कभी से कर दिया था।

तो किस लिए वह देखने को जायगी? तुरन्त प्रेरणा हुई, कारण समझ मे आ गया। वह स्वय इस देश के राज-काज की विधात्री थी। वह ऐसे प्रसंग पर अ-दृष्ट रहे, तो विधात्री के धर्म से भ्रष्ट हो जाय। यह कारण सत्य है या नहीं, इस विषय पर उसने बहुत सोचा-विचारा और अन्त मे इस निर्णय पर पहुँची कि इसका कारण सत्य है, शुद्ध है। उसने सवारी देखने का निश्चय कर लिया।

चौथा प्रकरण

पृथ्वी-वल्लभ

मृणालवती सवारी का जलसा देखने आयगी, और आनन्द-उत्सवो पर लगाये गये अंकुश इस प्रसंग पर हटा लिये जायँगे—जब यह बात नगर मे फैल गई, तब लोगो मे एक बड़ा उत्साह छा गया। अनेक वर्षों का दबा हुआ स्नेह छलछला उठा और अ-दृष्ट हुआ आनन्द दृष्टि पड़ने लगा। दूसरे दिन प्रातःकाल घरो की छतो पर और खिड़कियो मे हँसते-खेलते और आनन्द-उत्सव मनाते प्रसन्न स्त्री-पुरुष दिखाई पड़ने लगे। राज-महल की अटारी पर, रङ्ग-बिरंगे वस्त्रो से सजी हुईं स्त्रियाँ शोभायमान थीं। उन सब के मुख पर एक अ-कल्पित आनन्द था। दीर्घकाल के पश्चात् होने वाले इस उत्सव को देखकर उनके हृदय प्रफुल्लित हो रहे थे। जब सवारी राज-महल के मार्ग पर आ गई, तो एक दासी तुरन्त अन्दर गई और सब स्त्रियाँ शान्त होकर, वस्त्राभूषणो को ठीक करके, अन्दर के द्वार की ओर आतंक-पूर्ण दृष्टि से देखने लगी।

मृणालवती बाहर अटारी में आ बैठी। आज उसने वल्कल त्याग कर सादे सफेद वस्त्र पहने थे। उसकी धनुष की तरह लम्बी आँखें, आज स्थिर और कठोर थीं। होठ, दृढ़ता से दबे हुए थे। उसका विद्रूप चेहरा, इस कठोरता से

और अधिक विद्रूप हो रहा था। और उसे देख कर निकट खड़ी हुई स्त्रियों को रोमाञ्च हो रहा था। जक्कला, लक्ष्मी और विलास मृणाल के पीछे आकर बैठ गईं थीं। विलास ने भी आज सफेद वस्त्र धारण किये थे। उसका पतला छरहरा शरीर, इन वस्त्रों से चन्द्रकला की भाँति मनोहर प्रतीत होता था। उसके वदन पर उत्साह था। उसके चेहरे से यह साफ़ प्रकट हो रहा था कि बहुत दिनों के बाद उसने इस आनन्द का अनुभव किया है!

नगाड़े के नाद और शहनाइयों के स्वर से गगन गूँज उठा। सवारी आ पहुँची।

सब से पहले नगाड़ेवाली साँड़नियाँ आईं और पीछे विजय-नाद करती हुई पैदल सेना। उसके बाद घुँघरुओं की झंकार करते हुए घोड़ो पर बैठे सवार आनन्दोन्मत्त होकर हाथ में भाले नचाते हुए आ पहुँचे।

उनके पीछे खिन्न मुख किये हुए मालवीय योद्धा-गण आये। उनके हाथ पीठ के पीछे बंधे हुए थे, उनके वस्त्र और कवच रक्त से सने हुए थे, उनके सिर पर से शिरस्त्राण और हाथ में से शस्त्र छीन लिये गये थे। कुछ महीनों पहले जिन योद्धाओं ने मान्यखेट पर विजय प्राप्त की थी, वे इस समय बन्दी होकर, निस्तेज बन कर, आयुध-धारी तैलङ्गी योद्धाओं के विनोद की सामग्री बन कर, तैलप सेना की शोभा बढ़ा रहे थे।

इन योद्धाओं की कतार के समाप्त होने पर, शिरस्त्राण और कवच धारण किये हुए घुड़सवार, तैलङ्गी भट्टराज और

पीछे तैलपराज के सामन्त एक-के-पीछे एक आने लगे। सामन्त-सरदारो के समाप्त होते ही सब लोग ध्यान से देखने लगे। सौ-डेढ़-सौ शस्त्र-सज्जित बन्दी-जन पैदल चले आ रहे थे। मृणालवती की निरसता ने देश मे से कवियो को जड़-मूल से उखाड़ डाला था; परन्तु भाट-चारणो को राज-कार्य्यों से बिलकुल अलग नही कर दिया था। ये वीर बन्दी-जन विजयोल्लास से हँसते हुए चल रहे थे।

उनके पीछे पचास-साठ बन्दी सादे वस्त्रो मे आये। वे योद्धा नही मालूम होते थे। उनके मुख सुकुमार थे, उनकी चाल धीमी थी।

जैसे ही ये लोग महल के सामने पहुँचे कि लक्ष्मी देवी ने विलास का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा—"देखो, वे कवि हैं।" मृणालवती ने लक्ष्मी की बात सुन ली। उसने कठोरता से पूछा—"क्या कहा ?"

"बहन जी, ये मुञ्जराज के कवि है।"

"तुमसे किसने कहा ?"

"महासामन्त ने।"

मृणालवती ने तिरस्कार पूर्वक कहा—"युद्ध मे भी पृथ्वीवल्लभ कवियो के बिना न रह सका ? इन मनुष्यो का उपयोग ?" विलास दम साध कर एक टक से, उन नये प्रकार के मनुष्यो को देखने लगी। उसने कवियो के विषय मे चोरी-छुपे बहुत-कुछ सुना था। मृणाल उन्हे धिक्कार रही थी। इससे उसकी जिज्ञासा और बढ़ गई। कवियो को आज सदेह देखकर विलास के मन में कुछ आनन्द हुआ;

परन्तु इस आनन्द को उसे अपने अन्तर मे ही लीन कर लेना पड़ा। विलास की ऐसी ही बान पड़ गई थी।

सवारी आगे बढ़ी। कवि समुदाय के पीछे डंके निशान के साथ नंगी तलवार और भाले लेकर चलते हुए दो सौ सैनिको का समूह आया। सब के बाद तैलपराज का हाथी झपट कर आता हुआ दिखाई पड़ा। उस पर तैलप और भील्लम दोनो बैठे हुए थे। उन्हे देखकर जनता ने जय-जय-कार करते हुए हर्ष प्रकट किया। किन्तु राज-महल की अटारी पर एक दम मौन छाया हुआ था।

मार्ग में एक स्वर से जन-समूह का जय-नाद सुनाई पड़ने लगा—"तैलप महाराज की जय।" सब बड़े ध्यान से देखने लगे। सैनिक गण तैलप के हाथी को चारो ओर से घेर कर चल रहे थे। केवल एक गली-सा मार्ग अवशेष था और उस पर एक ही बन्दी चल रहा था। लोग टकटकी लगाये देख रहे थे। क्या यही मालवे का मुञ्ज है?

ज्यो ही सैनिक-गण मार्ग के दूसरे किनारे पर पहुँचे, कि मृणाल ने कहा—"देखो, यह मुञ्ज है।" उसके स्वस्थ हृदय मे गर्व की एक लहर आ गई; उसके मुख पर सन्तोष छा गया। मृणाल का यह आनन्द देखकर सब मे साहस आगया। जक्कला बोली—"आज शान्ति मिली। इस पापी ने इतने वर्षों कल न लेने दी थी।"

मृणाल ने होठ चबाते हुए कहा—"तैलप ने भी इसे कहाँ चैन से बैठने दिया है? आज इसकी कीर्त्ति भी धूल में मिल गई।"

विलास ने पूछा—"बेचारे मुञ्जराज को इस प्रकार नंगे पैरों क्यो घसीटा जा रहा है ?"

लक्ष्मी ने कहा—"यह भाग्य का भोग है।"

जक्कला ने कहा—"अनेक वीरो की मृत्यु का यह बदला है ।"

मृणालवती ने कठोरता से कहा—"जक्कला, इसमे बदले की आवश्यकता नही है। सत्य की ही विजय होती है। यह असत्य का अवतार था; अतएव पराजित हुआ ।"

लक्ष्मी देवी ने पूछा—"तो बहन, यह बड़ा पापी है ?"

मृणालवती ने दृष्टि उठाकर देखा कि लक्ष्मी कही व्यंग्य तो नहीं कर रही है; परन्तु निर्दोष मुख देखकर उसने उत्तर दिया—"हाँ, पापी है। इसका-सा कलंकी पुरुष पृथ्वी पर दूसरा नही है। इसका स्पर्श होने से सात पीढ़ियां नरक मे जायँगी ।"

"ओह, ऐसी बात है! परन्तु देखिए तो सही, कैसा दिख रहा है ?"

धीरे-धीरे मुञ्ज महल के नीचे वाले मैदान मे आ पहुँचा। मृणालवती ने कठोरता से कहना शुरू किया—"मनुष्य जैसा......" मृणाल आगे न बोल सकी। शब्दावली अधूरी रह गई। वह निश्चल और प्रमत्त नयनो से मुञ्ज को देखने लगी।

सैनिको से घिरे हुए मैदान मे वह अकेला खड़ा था । उसके शरीर पर धोती और पीठ के पीछे बँधे हुए हाथो मे

हथकड़ी के सिवा कोई वस्त्राभूषण न था। तो भी जो उसे देखता, देखता ही रह जाता।

चारो ओर खड़े हुए सैनिक उसके सामने बालक-से मालूम होते थे। ऐसा भासित होता था, मानो विजयी सेना उस ही की कीर्ति और शोभा की वृद्धि कर रही है।

उसका शरीर सु-गठित और प्रचण्ड था। उसका मुख मोहक और तेजस्वी था। उसके लम्बे काले बाल, सुरसरो-जल के समान उसके शंकर-से विशाल स्कन्धो पर गिर कर मुख के तेज को विशेष आभावान् बना रहे थे। डसने के लिए पीछे खिंचे हुए फणधर के फण की तरह उसका पुष्ट गल-प्रदेश और पीछे झुकाया हुआ मस्तक, गर्व और लापरवाही से जगत् का तिरस्कार करते हुए प्रतीत होते थे। हाथो के पीछे जकड़े रहने के कारण, विशाल वक्षस्थल के संगमरमर की तरह, चिकने और स्पष्ट स्नायुवाले भाग दैवी वक्षस्त्राण की पूर्ति कर रहे थे; और अपनी दुर्धर्षता और प्रताप दिखाकर मानों जगत् को डरा रहे थे। उसके सु-गठित पुष्ट पैर, धरणी को कॅपाते हुए स्तम्भ की तरह, कमर के ऊपर शरीर को धारण किये हुए थे।

इतना बलवान शरीर होते हुए भी केवल स्नायुओ की समृद्धि में ही उसकी अपूर्वता समाप्त न हो गई थी। वह शरीर जीवित मनुष्य का नही मालूम होता था, ऐसा मालूम होता था मानो शारीरिक अपूर्वता का स्वप्न दिखलाई पड़ रहा हो और अंग-अंग से दिव्यता टपक रही हो। वह धीरे-धीरे पैर उठाता, जैसे मत्त गजेन्द्र। उसके मुख पर

क्षोभ और खिन्नता तनिक भी नही दिखलाई पड़ती थी। मृणाल ने दृष्टि गड़ा कर सब देखा; उसके क्रोध का पार नहीं रहा। वह उन्मत्त हो गई। मुञ्ज के व्यक्तित्व से प्रकट हुए प्रताप के समक्ष उसे ऐसा ज्ञात होने लगा मानो वह बड़ी अधम है; भाई तलप की राज-सत्ता उससे कहीं क्षुद्र है और यह विजय वास्तव मे मुञ्ज की ही विजय है। उसने अपने अंगारे के समान जलते हुए नेत्रो को शान्त किया, होठो को दृढ़ किया और उक्त विचार को हँसकर दूर करते हुए वह एकटक उसे देखती ही रह गई।

राज-महल के आगे सवारी ज़रा ठहर गई। अटारी मे 'जहाँ मृणाल बैठी थी, ठीक उसके नीचे ही मुञ्ज एक पैर आगे बढ़ा कर सारी सेना को एक दृष्टिपात से अधमता का अनुभव कराते हुए, सवारी के आगे बढ़ने की प्रतीक्षा करता हुआ दृढ़ता से खड़ा हो गया।

विलास से अब न रहा गया। वह बोली—"बहन जी, कैसा अद्भुत पुरुष है!"

विलास के ये धीमे शब्द भी नीचे पहुँच गये। आँखो पर लहराते हुए लम्बे-लम्बे केशो को सिर पर उछाल कर पीछे डालते हुए मुञ्ज ने ऊपर देखा। ऊपर देख कर अटारी में खड़ी हुई रमणियो की ओर दृष्टिपात किया। सब स्त्रियाँ स्तब्ध हो गईं। कई घबरा कर दीवार और स्तम्भ से चिपट गईं।

मुञ्ज ने एक सर्वग्राही दृष्टि विलास पर डाली, फिर प्रत्येक सुन्दरी की ओर देखा; और अन्त में मृणाल पर दृष्टि

ठहरा कर वह हँस पड़ा। अचानक निर्मल आकाश में उदय हुए सूर्य की तरह मुञ्ज के सुन्दर मुख को देख कर मृणाल सब कुछ भूल गई। केवल एकटक देखती रह गई। उसे केवल इतना ही भान रहा कि उस मुख पर एक भी रेखा अधूरी न थी। एक भी भाव का अभाव न था। विशाल भाल की स्फटिक-सी निर्मलता, बड़ी और तेजस्वी आँखों में से टपकती हुई मधुरता, सुन्दर लुभावने होंठों की हास्यमयी मोहकता और चेहरे पर हँसती हुई स्पष्ट विजय ही उसने देखी। उस दिव्य मुख पर काव्य की मधुरिमा थी। उस हास्य में पुष्पधन्वा का सच्चा शर-सन्धान था। सब स्त्रियाँ प्रमत्त हो गईं। मृणाल भी केवल एक क्षण-भर के लिए स्तब्ध रह गई। सवारी आगे बढ़ी। मुञ्ज ने फिर ऊपर देखा और एक हास्य-बाण छोड़ कर आगे चलने लगा। किसी ने तैलप-राज को नहीं देखा। किसी ने महासामन्त की ओर दृष्टि नहीं उठाई। नीची दृष्टि करके दूर जाते हुए पृथ्वी-वल्लभ की पीठ की ओर ही सब देखते रहे।

मृणाल सबसे पहले स्वस्थ होकर खड़ी हो गई और सबके खोये हुए हृदय फिर आ गये। सब स्त्रियाँ मृणाल की प्रखरता को भूल कर मुञ्ज की प्रशंसा करने लगीं। न जाने किस कारण मृणाल के मुख पर भयंकर कठोरता छा गई।

लक्ष्मी ने कहा—"बहन जी, जो बात महासामन्त कहते थे, वह वास्तव में ठीक है। सचमुच वह 'पृथ्वी-वल्लभ' है।"

मृणाल लक्ष्मी की ओर क्षण भर के लिए स्थिर नयनों

से देखती रही। फिर तुरन्त ही कठोर स्वर मे बोली—"लक्ष्मी, सच्चा 'पृथ्वी-वल्लभ' तैलपराज है।"

विलास बोल उठी—"परन्तु क्या रूप है ?"

मृणाल ने कुपित होकर ज़ोर से विलास का कान ऐंठ दिया और कहा—"क्षण भर मे ही सब भूल गई ? मैंने पहले ही कहा था कि ऐसी जगह बालकों को न ले जाना चाहिये। न कुछ रूप देख कर ही तुम इस प्रकार भूल जाओगी, तो तुम्हारा कल्याण कैसे होगा ? देखो—मुझे क्यो नही कुछ होता ? जाओ, सब जाओ। तुम्हारे मन मे यदि इस आनन्द का तनिक भी विकार आ गया हो, तो जाओ, प्रायश्चित्त करो।"

सिहनी की गर्जना पूरी हुई और घबराई हुई हरिणियाँ तुरन्त भाग गईं

——

पाँचवाँ प्रकरण

वरदान

मृणालवती वहाँ से दृढ़ता-पूर्वक चली गई। उसे इस समय अपने वैराग्य की पूर्णता का ध्यान आया। मुझ में रूप और तेज की कमी न थी, इससे साधारण प्राणी मोह में आ सकता है; पर वह कैसी है? ज्यों-की-त्यों अचल, स्वस्थ और सात्विक।

परन्तु उसके अन्तर में किसी ने प्रश्न किया—"तू क्यों क्षणभर के लिए स्तब्ध हो गई थी?"

उसने विस्मित होकर मन-ही-मन अपने अन्तर को उत्तर दिया—"मै? मै तो केवल अपने भाई के शत्रु को देख रही थी। मेरे हृदय में कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ था। मै केवल यही निरीक्षण कर रही थी कि मनुष्य अधमता की गहराई मे पहुँच कर कैसा मालूम होने लगता है। स्तब्ध! मै स्तब्ध होऊँगी? वह तो एकाग्रता थी। विवेक भ्रष्ट होने पर ही मनुष्य स्तब्ध हो सकता है।" इस प्रकार के विचार करती हुई वह अपनी पूर्णता के गर्व से फूल उठी।

नगाड़े की गड़गड़ाहट से उसे विदित हुआ कि सवारी उतर गई है। वह धीरे-धीरे राज-महल के द्वार की ओर चली। इस अप्रतिम विजय-गर्व की खुमारी अब उतर चुकी थी और उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह बहुत कुछ

स्वस्थ हो गई है। उसे सन्तोष हुआ। यह उसके वैराग्य की निश्चलता थी; किन्तु क्या उसके हृदय मे एक अस्पष्ट खिन्नता चुटकियाँ नही ले रही थी? पर, उसने हँस कर यह विचार ही उड़ा दिया। वह सोचने लगी--तीस वर्ष के अभ्यास से निर्विकार हुए हृदय मे खिन्नता कैसी?

जब वह द्वार के आगे पहुँची, तब वहाँ एकत्र हुए राज पुरुषो के समूह में शान्ति प्रसारित हो गई। मौन होकर सब तैलंगण की भाग्य-विधात्री की स्वस्थ, कठोर, सादी; किन्तु भयङ्कर मूर्ति की ओर देखने लगे। उसकी आँखो के पलक और मुख पर के भाव, सब के लिए ईश्वरेच्छा जानने के साधन थे।

वह आई। तैलपराज ने आकर उसे साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उसके चरणो की रज अपने मस्तक पर चढ़ाई।

तैलप का रूप और उसके शरीर का गठन मृणाल का-सा ही था। केवल चेचक के दाग उसके चेहरे पर न थे। शरीर की एक-एक रेखा पौरुष पूर्ण, स्पष्ट और माधुर्य्य-हीन थी। आँखे ज़रा छोटी और धँसी हुई थी। मृणाल के मुख पर ज़रा कठोरता थी और तैलप के मुख पर क्रूरता।

तैलप गणक-बुद्धि वाला, कठोर हृदय का और बड़ा चुस्त-चालाक था। मृणाल की शिक्षा के प्रताप से उसमें आर्द्रता का नाम भी नही रह गया था। जिसने उसे माता की तरह पाला-पोसा, पिता की तरह लिखाया-पढ़ाया, शिक्षित किया और अधिष्ठात्री देवी बन कर चक्रवर्त्ती सम्राट

बनाया, केवल उस बहन के लिए, उसके हृदय में अथाह प्रेम और असीम सम्मान था। उसकी बुद्धि और पवित्रता मे अचल श्रद्धा थी।

प्रणाम करके उठते हुए तैलप से मृणाल ने कहा—"रण-रङ्ग-भीम, सौ शरद् जियो और सच्चे पृथ्वी-वल्लभ बनो।"

"आपका आशीर्वाद।" कह कर तैलप खड़ा हुआ और पीछे खड़े हुए भील्लमराज की ओर देखकर बोला—"बहन, महासामन्त को भी आशीर्वाद दो; आज इनके प्रताप से ही मै जीवित रह कर मुञ्ज को बंदी बना सका हूँ।"

मृणाल ने तनिक हँसते हुए कहा—"भील्लमराज ने यह बात बहुत पहले ही मुझसे कह दी है। इनको सदा ही मेरा आशीर्वाद है। ये दीर्घजीवी हो और तैलपराज के सामंतो में अग्रस्थान भोग करें।"

भील्लम ने होठ चबाते हुए, नत होकर पद-स्पर्श किया।

मृणाल ने कहा—"अच्छा चलो, कवच उतार डालो और स्वस्थ हो लो।" यह कहकर वह तैलप को अन्दर ले चली।

तैलप ने मुड़ कर कहा—"भील्लमराज, तुम भी चलो, ज़रा काम है।" भाई-बहन आगे और सामन्त पीछे, इस प्रकार तीनो मौन धारण किये हुए अन्तःपुर मे गये। धीरे-धीरे सब लोगो का समूह बिखर गया।

अन्तःपुर के एक खण्ड मे मृणाल की मर्यादा से नवोढ़ा बनी हुई, प्यारी जक्कलादेवी केवल नेत्रो से आनन्द

और उत्साह प्रकट करती हुई पति की प्रतीक्षा कर रही थी। तैलप ने आकर अपना कवच और आयुधोको एकएक करके उतारा। रानी मौन-मुख उन्हे ले गई। फिर उसने अपने स्वामी का सत्कार किया। तैलप निवृत्त होकर तकिये के सहारे बैठी हुई मृणाल के निकट आ बैठा। भील्लम भी पालथी मार कर सामने बैठ गया। जक्कला ने आतुर आँखो से वहाँ ठहर जाने की आज्ञा चाही; पर न मिली। वह चली गई।

"बताओ बहन, अब मुञ्ज का क्या किया जाय ?"

मृणाल उत्तर देने के पहले कठोरता से क्षण भर के लिए भूमि की ओर देखती रही। इस क्षण भर में मुञ्ज का प्रतापी और हँसता हुआ मुख-मण्डल चित्र की तरह उसकी आँखो के सामने आ गया।

दूसरे ही क्षण दाँत पीसते हुए मृणाल ने कहा—"क्या किया जाय ? उस पापी को कठोर-से-कठोर दण्ड देना चाहिये।"

तैलप के धँसे हुए क्रूर नयनो में विष व्याप्त हो गया। उसने दृढ़ता से कहा—"तो कल उसका वध कराया जाय ?"

आँखो से अग्नि-वर्षण करते हुए मृणाल ने उत्तर दिया—"वह कोई साधारण शत्रु नही है। उसने तुम्हे सताने मे क्या बाकी छोडा है ? सबके देखते तुम्हारे देश की स्त्रियो का सुहाग लूटा; अवन्तिका में अनेक बार तुमसे पैर धुलवाये और तुम्हारी और मेरी कीर्त्ति को कलंकित करने के लिए अनेक काव्य रचे और रचवाये। उसे तो दुःख दे-देकर मारना चाहिये। तभी बदला चुकेगा।"

तैलप ने कुछ विचार करते हुए कहा—"तो क्या किया जाय बहन ?"

मृणाल ने पूछा—"तुम्हारा क्या विचार है, भील्लमराज ?"

भील्लमराज ने सरलता से संक्षेप मे कहा—"बहन, बन्दी किये हुए राजा का वध करने मे मुझे कोई बड़ाई नहीं मालूम होती । उसे दुःख दो, कष्ट दो; परन्तु उसका सिर सर्वदा अ-स्पर्श्य समझो ।"

तैलप जरा तिरस्कार के भाव मे बोला—"महासामन्त, वध तो वध ही है । चाहे वह युद्ध मे हो, या शूली पर । मुझे दोनो मे कोई अन्तर नहीं दीखता ।"

दोनो की बाते सुनकर मृणाल ने अपने हृदय की भयंकरता छिपाते हुए बड़ी शान्ति से कहा—"नहीं भाई, मुझे महासामन्त की बात बहुत उपयुक्त मालूम होती है । वध करने से क्या लाभ होगा ? उसका पहाड़ जैसा शरीर क्षीण हो जाय, उसकी आँखे निस्तेज हो जायें, उसके मुख पर का हास्य उड़ जाय, उसके शरीर पर दीनता छा जाय और तुम्हारी और मेरी अनुकम्पा के लिए अनुनय-विनय करते करते उसकी जीभ घिस जाय, उसका गर्व गल जाय, तभी सोलह-सोलह बार हुई पराजय का बदला लिया जा सकता है ।"

तैलप के मुख पर सन्तोष छा गया । उसने कहा—"ठीक है बहन, परन्तु लोगो का कहना है कि उसका गर्व गलित करना सहज नहीं है ।"

मृणाल ने तिरस्कार के भाव से कहा—"यह सब बातें हैं। मै देख लूँगी कि उसका गर्व कैसे रहता है।"

तैलप ने चकित होकर कहा—"तुम ?"

"हाँ, मै। अवन्तिका में बैठे-बैठे उसने मेरे लिए कुछ कम कहा और कहलवाया है ? अब मै देख लूँगी, वह हमारे सामने क्या कहने का साहस करता है। उसे कहाँ रक्खा गया है ?"

"राज-महल के तहखाने मे।"

"ठीक है। मै संध्या-समय उससे मिलूँगी।"

"मैंने कार्त्तवीर्य को भेजकर उसके सामन्तो से पुछवाया है कि उन्हे हमारी अधीनता स्वीकार है या नहीं ? यदि स्वीकार न करेंगे, तो कल उनका वध करा दूँगा। अन्य योद्धाओ को भी कल समाप्त करूँगा।"

"ठीक है।"

तैलप ने भील्लमराज की ओर आकृष्ट होकर कहा—"भील्लमराज, इस समय बहन भी बैठी हुई हैं। बताओ, क्या वरदान चाहते हो ? जो चाहो, इस समय मिल सकता है। तुम्हारी सेवा के बदले जो भी दे सकूँगा, थोड़ा होगा।"

भील्लम ने ज़रा धीरे-धीरे कहा—"महाराज, यह तो आपका सौजन्य है; परन्तु मैने जो-कुछ किया, वह बदले के लिए नही किया है।"

मृणाल भी निश्चय करके बोली—"महासामन्त, वर माँगना तुम्हारा अधिकार है।"

भील्लम मृणाल के मुख की ओर देख कर बोला—

"वहन, जो मै माँगूँ, वह देना आपको भला न लगे, तो मेरी वात भी जाय, और आपकी भी।"

"तुम्हारे विवेक में और महाराज की उदारता मे मुझे श्रद्धा है। तुम्हारी वात नहीं टाली जायगी।"

तैलप ने मीठी हँसी हँसते हुए कहा—"वोलो, वोलो, संकोच न करो। तुम्हारी मैत्री से अधिक मुझे कोई वस्तु प्रिय नही है।"

भील्लम क्षण भर के लिए दोनो भयंकर भाई-वहन की ओर देखता रहा और फिर धीरे-धीरे कहने लगा—"महाराज, मेरे हृदय में एक ही आकांक्षा है और उसे आप जानते ही है।"

"वह क्या?"

"कुँवर सत्याश्रय के साथ विलास का विवाह।"

भील्लम की वात सुनकर मृणाल ने हँसते हुए कहा—"महासामन्त, तुमने भी ख़ूब कहा। इस वर के लिए भी इतने विचार की आवश्यकता थी? यह वर तो कभी से मिल चुका है।"

"परन्तु मै यह चाहता हूँ, कि जहाँ तक हो, शीघ्र ही यह विवाह हो जाय।"

"यह भी मैंने निश्चय कर लिया है।"

"तो कब होगा?"

"आगामी मास मे। मैंने कभी से मुहूर्त पूछ रक्खा है और अब इस विजय-समारम्भ के साथ ही विवाह हो जायगा।"

मृणाल की बात समाप्त होते ही तैलप ने हँस कर

कहा—"भील्लमराज, और कुछ माँगो। तुम तो मुझे लज्जित कर रहे हो। क्या मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नही है जिससे मै तुम्हे प्रसन्न कर सकूं—सुखी कर सकूँ ?"

भीलम बड़े असमंजस में पड़ गया। तैलप को वह भली-भाँति पहचानता था। वह जानता था कि तैलप बड़ाई चाहता है। वरदान से मिलने वाली महिमा का इच्छुक है। भीलम जैसे आदमी को रिझाकर उसका असन्तोष दूर करना चाहता है। परन्तु भीलम को यह भली भाँति ज्ञात था कि यदि वह तैलप की इच्छानुकूल वर न माँगेगा, तो वह न मिल सकेगा और यदि मिल भी सका, तो तुरन्त ही छीन लिया जायगा। भीलम की बड़ी इच्छा थी कि वह लक्ष्मीदेवी को लेकर अपने देश जाय; परन्तु वह इस इच्छा को प्रकट नही कर सकता था। उसे इस वर के मिलने की आशा नहीं थी। इसलिये उसने यह वर नहीं माँगा। भीलम का विचार था कि माँगने पर कोई वस्तु न मिले तो यह बड़े अपमान की बात है। इसीलिये ऐसे अपमान से, पराधीनता का दुःख सहना ही उसे भला मालूम हुआ। अचानक उसे एक बात याद आ गई। जिस समय वह मुञ्ज को पछाड़ कर उसकी छाती पर चढ़ बैठा था और बल-पूर्वक उसके शस्त्र छीन लिये थे उसी समय मुञ्ज ने उसके कान मे कुछ शब्द कहे थे। कहा था—"भील्लम, मेरा कुछ भी हो, इसकी चिन्ता नही; परन्तु मेरे कवियो को कष्ट न होने पावे।" विजय के उत्साह मे भील्लम इन शब्दो को भूल गया था। इस समय वे स्मरण हो आये।

इन शब्दो को स्मरण करके मुञ्ज के प्रति उसके हृदय मे बड़ा सम्मान जाग्रत हुआ। पराजित होकर पृथ्वी पर पड़े रहने के समय, यमराज के आह्वान से मस्तिष्क भ्रमित हो जाने के समय भी उस महापुरुष ने अपने मित्रो को विस्मरण नही किया। कहाँ वह महान् आत्मा पृथ्वीवल्लभ, और कहाँ यह उसका विजेता! यह सब स्मरण आते ही भील्लम दृढ़ता से बोला—"महाराज, आपके राज मे मुझे किस बात की कमी है? परन्तु एक बात चाहता हूँ—यदि आज्ञा हो—।"

मृणाल ने तनिक तीक्ष्णता से भील्लम की ओर देखकर कहा—"क्या है? कह डालो, क्या चाहते हो?"

भील्लम ने उतावली से कह डाला—"मालवे के कवियो का जीवन-दान।"

तैलप हँस पड़ा। मृणाल की भवें संकुचित हो गई।

मृणाल ने तिरस्कार पूर्वक कहा—"वाह भील्लमराज, यह क्या माँगा?"

भील्लम—"बहन, मेरे पूर्वज कवि-गण-त्राता कहलाते थे, मै तो ऐसा यशार्जन नहीं कर सका। केवल एक यह अवसर मिला है।"

मृणाल—"ऐसे पापियो से भूमि का भार बढ़ाओगे? इससे तुम्हे क्या लाभ होगा?"

तैलप ने भी बहन का समर्थन करते हुए कहा—"भील्लमराज, ऐसे जन्तुओं का जीवन-दान माँगने की अपेक्षा और कई वस्तुएँ माँगने के योग्य है।"

दृढ़ता से भील्लम के होठ मुँद गये। कहा—"महाराज,

यदि मेरी याचना स्वीकार न हो सकती हो, तो कोई बात नहीं। आप प्रभु है। आपने कहा, मैंने माँगा; अन्यथा मै कुछ भी माँगना नहीं चाहता था।"

"तो उन्हे छुड़ाकर क्या करोगे ?"

"जो आप कहेगे। मुझे उनसे कोई विशेष काम नही है।"

"ठीक है। उन सब से मुझ की अ-कीर्त्ति के गान गवाये जायँगे।"

"जो आपकी इच्छा हो कीजियेगा। मै तो केवल यह चाहता हूँ कि वे किसी तरह जीवित रहे।"

तैलप ने बहन की ओर देखते हुए कहा—"अच्छा, जाओ, उन्हे जीवित रहने दिया जायगा। बस न ? परन्तु उन्हे मुक्त करके घूमने-फिरने न दिया जाय।"

"जो आज्ञा। मै अपने महल के तलावास में रक्खूँगा।" कहकर भील्लम ने यह उचित समझा कि अब यहाँ बैठना ठीक नही है। उसने उठते हुए कहा—"तो महाराज मुझे आज्ञा।"

"हाँ, जाओ। सभा में आ पहुँचना।"

"बहुत अच्छा, जो आज्ञा।" कह कर भील्लम चला गया।

भील्लम के चले जाने पर तैलप की ओर देखते हुए मृणाल ने कहा—"भाई, मुझे इस मनुष्य पर विश्वास नहीं होता।"

तैलप—"आदमी तो बड़ा साफ़ है; परन्तु इसकी स्त्री

इसे शान्त होकर नहीं बैठने देती। इसीलिये तो मैंने वर मांगने को कहा था।"

किसी के पैरो की आहट सुन कर मृणाल ने पूछा—"अ-कलंकचरित आ रहा है क्या ?"

तैलप द्वार की ओर देखने लगा।

एक युवक ने प्रवेश किया। उसकी वयस् बीस-बाईस वर्ष की ज्ञात हो रही थी। उसका मुख-मण्डल बिलकुल तैलप की तरह प्रतीत हो रहा था। उसके सीधे और सशक्त शरीर पर बहुमूल्य कवच शोभायमान था और सिर पर एक छोटा-सा मुकुट उसके सुन्दर मुख के गौरव की वृद्धि कर रहा था। उसने आकर मृणाल को दण्डवत्-प्रणाम किया और तैलप को नमस्कार करके पालथी मारकर बैठ गया।

"बेटा सत्याश्रय, क्या कर आये ?"

सत्याश्रय ने गम्भीर स्वर मे कहा—"पिताजी, महल के तलायन में अभी मुञ्ज को छोड़ आया हूँ और पहरे पर सामन्त भीमरस को नियुक्त कर दिया है।"

"बहुत अच्छा किया।"

"और काठ का एक विशाल पिञ्जरा बनाने का आदेश भी कर आया हूँ।"

"शाबाश। सत्याश्रय, तुम्हारा विवाह निश्चित हो गया है।"

"जी" कहते हुए सत्याश्रय ने सिर झुका लिया।

मृणाल ने सत्याश्रय के मुख की ओर देखते हुए

कहा—"विजयोत्सव के साथ यह उत्सव भी बड़ी शोभा देगा। अच्छा, जाओ, अब तुम निवृत्त होओ।"

सत्याश्रय ने "जो आज्ञा" कहकर सिर नवाया और चल दिया।

जाते हुए सत्याश्रय को लक्ष्य करके मृणाल ने कहा—"परन्तु देखो, किसी समय विलास से मिल आना।" सत्याश्रय ने उत्तर-निदर्शक सिर नवाते हुए प्रस्थान किया।

छठा प्रकरण

रसनिधि

राजा ने वचन तो दे दिया; पर भील्लम को भय था कि कहीं वह अपने वचन को न लौटा ले। इस विचार से वह सीधा वहाँ पहुँचा, जहाँ मालवे के कवि-गण वन्दी करके रक्खे गये थे।

एक भट्टराज पहरे पर था। उसने राजा का वरदान सुना, तो बड़ा विस्मित हुआ। महासामन्त भील्लम के आदेशानुसार उसने कारागृह का द्वार खोल दिया।

महासामन्त को देख कर वहाँ बैठे हुए कवियो मे खलबली मच गई।

महासामन्त भील्लम ने नम्रता से कहा—"कविगण, मै क्षमा चाहता हूँ। मै एक प्रार्थना करने आया हूँ। मेरे आतिथ्य को स्वीकार कीजिएगा।"

एक सुकुमार, मझोले कद का और रूपवान युवक खड़ा होकर सामने आया और हँसकर बोला—"क्या आप यमराज हैं?"

भील्लम उस युवक की रूप-कान्ति को निहारता रह गया।

क्षण भर मौन रह कर उसने कहा—"मै? नही, क्यो?"

एक दूसरे युवक ने आगे आकर कहा—"मृणालवती के इस शुष्क नगर में यमराज के सिवा कौन हमारा आतिथ्य कर सकता है ?"

उस पहले युवक ने कहा—"धनञ्जय, यह स्वतः यमराज नहीं है। उनके दूतो में श्रेष्ठ, स्थूनदेश के नराधिप हैं।

भोल्लम ज़रा हँस पड़ा। —"नही, मै केवल महा-सामन्त हूँ। और यमदूत भी नही हूँ, मै तुम्हे इस जीवित नरक से बचाने आया हूँ।"

धनञ्जय[1] ने कहा—"पृथ्वी-वल्लभ-हीन निस्तेज पृथ्वी पर कही जाने को स्थान नही रह गया है।"

"नही, महाराज ने आप लोगो को जीवन-दान दिया है। आप सब मेरे यहाँ पधारिये।"

यह सुनकर सब चकित हो गये और कुछ होश मे आकर, भोल्लम को घेर कर खड़े हो गये।

"आपका नाम धनञ्जय है न ?"

"जी।"

भोल्लम ने उस रूपवान युवक की ओर पुनः देख कर पूछा—"और आपका ?"

उस युवक ने कुछ हिचकते हुए कहा—"मेरा ?"

धनञ्जय ने कहा—"इनका नाम रसनिधि है और ये पद्मगुप्त—"

---

१ 'दशरूप' का लेखक।

"हाँ मेरा नाम रसनिधि है।" इतना कह कर रसनिधि भील्लम के साथ चला और सब उसके पीछे हो लिये।

मार्ग में चलते हुए भील्लम ने रसनिधि की ओर देख कर समझा कि उसकी सुकुमारता को देखते हुए उसका शरीर बहुत बलवान मालूम हो रहा है। शूरवीरो के शरीर के परखने की टेव के कारण भील्लम को ऐसा ध्यान हो आया कि यह पुरुष कवच से बड़ा शोभायमान हो सकता है। अपने इस विचार से वह मन ही मन हँस पड़ा। कहने लगा—"इस बेचारे को कवच और युद्ध से क्या मतलब ?"

महासामन्त मूक भाव से राजमहल के निकटस्थ अपने महल में आ पहुँचा और उसने कवि-गण के आतिथ्य की तैयारी के लिए अपने परिचारको को आदेश किया।

धनञ्जय को लक्ष्य कर के भील्लम ने कहा—"कविराज, आपको एक कष्ट देना है।"

धनञ्जय ने पूछा—"मुझे ? कहिए क्या आज्ञा है ?"

"बहुत दिनो से मेरी स्त्री और पुत्री ने कवियो के दर्शन नही किये। क्या आप पधारेगे ?"

धनञ्जय ने तिरस्कार पूर्वक कहा—"जहाँ कवि दुर्लभ हो वहाँ रूप मे सौन्दर्य्य नही रहता; राजा मे टेक नही रहती और स्त्रियो की आर्द्रता विनष्ट हो जाती है। यह कोई अनोखी बात नही है।"

"कविराज, आप भी पधारेगे ?"

रसनिधि ने पुनः हिचकते हुए कहा—"मै ?"

"हाँ, आप। इसमे संकोच की कौन बात है ?"

धनंजय ने बड़े ध्यान से रसनिधि की ओर देखा ।

"हाँ, रसनिधि, तुम भी चलो। चलो स्यूनराज ।" इतना कहकर तीनो अन्तःपुर मे गये ।

भील्लमराज ने आज अपने पूर्वजो के विरुद 'कवि-कुल-त्राता' की रक्षा की थी । बहुत दिनो के पश्चात् ऐसे संस्कारशील पुरुषो का सत्संग मिला था । भील्लमराज का हृदय आनन्द और गर्व से फूल उठा ।

लक्ष्मीदेवी अभी राज-महल से नहीं लौटी थीं और विलास शंकर के मन्दिर मे थी । भील्लम ने विलास को बुलाने के लिए एक दूत भेजा और स्वतः धनंजय और रसनिधि को साथ लेकर अन्तःपुर के पीछे वाली वाटिका मे एक विशाल पीपल के वृक्ष के नीचे जा बैठा और बातचीत करने लगा ।

थोड़ी देर बाद विलास का स्वर सुनाई पडा—"पिता जी—"

"कौन ? बेटी विलास !"

विलास के निकट आने पर महासामन्त ने कहा—"यहो आओ, तुम कवियो को देखना चाहती थी न ? देखो ये है ।"

विलास ने दोनो कवियो की ओर देखा और घबड़ा कर खडी रह गई ।

"यह कविराज धनंजय है। इनकी ख्याति तो मेरे स्यूनदेश तक पहुँची थी ।"

विलास ने सिर झुकाकर नमस्कार किया ।

धनञ्जय ने आडंबर के साथ कहा—"पुत्री, राघव जैसे नरेश की अर्द्धांगिनी बन कर सूर्य्य जैसे तेजस्वी पुत्रो की माता बनो।"

"यह कवि रसनिधि है।"

लज्जा से कुछ नीचा सिर करके जिज्ञासा-पूर्ण अधखुली आँखो से विलास ने रसनिधि की ओर देखा। विलास को उसका मुख कुछ विचित्र दीख पड़ा। वह कौन-सी विचित्रता थी और उसका उस पर क्या प्रभाव पड़ा, यह सब कुछ वह न समझ सकी।

रसनिधि हँसते हुए बोला—"भगवती, मै क्या आशीर्वाद दूँ? सुधानाथ को वरना और सुधा का आस्वादन कर के अ-कल्पित आनन्द प्राप्त करना।"

विलासवती आशीर्वाद का कोई स्पष्ट तात्पर्य न समझ सकी; परन्तु महासामन्त खिलखिलाकर हँस पड़ा।

"कविराज, यह अवन्तिका नही है।"

"सत्य है। नहीं तो क्या मै इस स्थिति मे होता?"

"हमारे यहाँ तो सुधानाथ सूख गये है और आनन्द का अनुभव करना पाप की पराकाष्ठा समझा जाता है।"

"है!"

"बहन मृणाल का वैराग्य तुमने नहीं देखा और कदाचित् इस विलास को भी नहीं जानते? इसने भी अब तपस्या आरम्भ करदी है।"

धनंजय ने पूछा—"किस लिए?"

"कविराज, तैलङ्गण की रीतियाँ अनोखी है।"

"परन्तु इस कन्या को इससे लाभ ?"

ज़रा अ-स्पष्ट कटाक्ष करते हुए भील्हम ने कहा—"कुँवर सत्याश्रय से विलास का विवाह होने वाला है। इसे मान्यखेट के नृपति की पटरानी के योग्य शिक्षा की भी तो आवश्यकता है ? ठीक है न विलास ?"

विलास ने मुस्कुरा दिया। दोनो कवि उसकी ओर दयार्द्र दृष्टि से देखने लगे।

धनञ्जय ने पूछा—"जब हृदय के निर्झर सूख जायँगे, तब कहीं यह पटरानी का पद प्राप्त कर सकेगी !"

"बहन मृणाल की ऐसी ही इच्छा है। आओ बैठो, विलास, मैने इन कवियो को छुडवा दिया है, अब ये अपने ही यहाँ रहेंगे।"

विलास भील्हम के निकट आकर खड़ी हो गई और मौन होकर तीनो की ओर देखने लगी।

विलास को एक अज्ञात अनुभव हुआ। उन लोगो के वस्त्र विचित्र थे; उनकी रीति-नीति स्वच्छन्द और विनम्र थी, उनकी बात-चीत में गाम्भीर्य्य और संयम का अभाव था; उनके मुख पर कठोरता और बुद्धिमानी का नाम न था। इन सब बातो से उसे यह वातावरण अस्वाभाविक दीख पड़ा; और इससे उसके हृदय मे किसी आघात का, किसी दुःख का अनुभव हुआ। परन्तु आघात और दुःख ऐसे आकर्षक दिखलाई पड़े कि उसे वहाँ से जाने की इच्छा न हुई।

रसनिधि ने पूछा—"तो आपके यहाँ से कवियो को देश-निकाला दिया गया है, यह सत्य है ? मै तो गप समझ रहा था।"

भील्लम ने कहा—"हमारे यहाँ जो न हो जाय सो थोड़ा है।"

"यहाँ कविता नहीं, रस नहीं, आनन्द नहीं, फिर क्या शेष रह गया ?"

"बोलो विलास, उत्तर दो।"

उसने धीरे से दृष्टि उठाकर रसनिधि की ओर देखकर कहा—"त्याग, शान्ति।"

"कितने मनुष्यों ने सच्चे त्याग और शान्ति का अनुभव किया है ?"

भील्लम ने हँसते हुए कहा—"हम सब तो देवता हैं।"

"देवता भी तो आनन्द की मूर्त्तियाँ है; किन्तु तुम तो पाषाण होने का प्रयास कर रहे हो।"

"यदि इस समय देवी होती तो तुम्हारी इस बात से उन्हे बड़ा आनन्द मिलता।"

विलास ने तोते की तरह रटा हुआ सूत्र कहा—"संसार मे सब कुछ चञ्चल है, केवल एक शान्ति निश्चल है।"

"नहीं, वह भी चञ्चल है। निश्चल तो केवल एक आनन्द है।"

विलास के मुख पर तिरस्कार का भाव छा गया। उसे हँसी आ गई। वह बोली—"बिना शान्ति के आनन्द किस तरह प्राप्त हो सकता है ?"

"सुख के अनुभव से।"

"तो वह क्षणिक है।"

"कौन कहता है ? यदि रसिकता हो तो शाश्वत सुख प्राप्त हो सकता है।"

लक्ष्मीदेवी अभी तक न आई थी। भीष्म का ध्यान उसी ओर लगा हुआ था। कवियो के वार्त्तालाप मे उसे आनंद भी न आ रहा था; इसलिए वह उठ खड़ा हुआ। उसने कहा—"आप लोग वार्त्तालाप कीजिए, मैं अभी आता हूँ। विलास की माता अभी तक नही आई है।"

भीष्म के जाने पर निकटस्थ सरोवर की ओर दृष्टिपात करके, धनंजय भी उठने लगा।

सातवाँ प्रकरण

रसिकता

विलास ने पूछा—"रसिकता किसे कहते हैं ?"

रसनिधि ने आँखें फाड़ कर कहा—"तुमको मालूम नहीं है ?"

"नहीं।"

"तुमने काव्यो का श्रवण किया है ?"

विलास ने हँसते हुए कहा—"आपके भर्तृहरि का वैराग्य शतक सुना है।"

"और शृङ्गार-शतक ?"

विलास ने कठोर दृष्टि से ऊपर देखा। कहा—"वह तो पापाचारियो के लिए है।"

रसनिधि हँस पड़ा। बोला—"कोई नाटक देखा है ?"

"जब बहुत छोटी थी, तब स्यूनन्देश मे देखा था; परन्तु स्मरण नहीं है।"

"किसी रात्रि मे चन्द्रमा की ज्योत्स्ना में पड़े-पड़े गाया है ?"

"नहीं। चन्द्र-ज्योत्स्ना में फिरना मेरे लिए त्याज्य है।"

रसनिधि गम्भीर होकर उसकी ओर देखने लगा। बोला—"तब तुम्हें रसिकता का अनुभव कहाँ से हो सकता

है ? यह तो कहो तुमसे यह सब साधनाएँ कौन कराता है ?"

"मै स्वतः करती हूँ । बहन मृणाल केवल सूचना दे दिया करती हैं ।"

"इन साधनाओं का कारण ? "

"त्याग-वृत्ति का उत्पादन ।"

"इस तरह त्याग-वृत्ति उत्पन्न की जाती है ? इसका तो तुम्हे ज्ञान ही नहीं । तुम क्या त्याग कर रही हो ?"

विलास ने कुछ विचार करते हुए कहा—"नहीं, है । मृणाल बहन सब समझाया करती है ।"

"वे मौखिक बातें है—अनुभव की नही ।"

"कलङ्कित करने वाली वस्तु का अनुभव—"

रसनिधि ने आवेश के साथ पूछा—"कौन वस्तु कलङ्कित करती है ? यदि काव्य कलङ्कित करता है, रस कलङ्कित करता है, ज्योत्स्ना का अमृत कलङ्कित करता है, और यह कहो कि प्रेम कलङ्कित करता है, तो यह कलङ्कित जीवन क्या बुरा है ?"

विलास ने जरा कठोरता से कहा—"मुझे निष्कलंक होना है ।"

रसनिधि मौन हो गया । क्षण भर पश्चात् उसने कहा—"तो तुम्हे मुझ जैसे पुरुष भी कलङ्कित मालूम पड़ते होगे ?"

"भोलेबाबा तुम्हें सद्बुद्धि प्रदान करें ।"

रसनिधि विकल होकर खड़ा रह गया । बोला—

"क्या तुम्हे कभी रसिकता का अनुभव करने की इच्छा नहीं हुई ?"

विलास तनिक विचार मे पड गई। बोली—"नही, कभी नहीं। इसका मुझे कभी ध्यान ही नहीं आता।"

"ध्यान देने की भी इच्छा नही होती ?"

"यदि पाप करने मे मन न लगता हो तो इसमे बुराई ही क्या है ? "

रसनिधि ने दयार्द्र दृष्टि से देखते हुए कहा—"विलासवती, रसिक होना—रसिकता का अनुभव करना—ही मै मोक्ष समझता हूँ।

कानो पर हाथ रख कर हँसते हुए विलास बोली—"नही, नही।"

विलास के हास्य से कोई दूसरा ही भाव टपक रहा था। "लीजिए, माताजी आ गई।" कह कर वह दूर से आते हुए भीष्म और लक्ष्मीदेवी की ओर मुड़ गई।

दोनो मौन-मुग्ध आगे बढ़े और रसनिधि ने लक्ष्मीदेवी को प्रणाम किया।

लक्ष्मी ने अपने पति की ओर कटाक्ष करके कहा—"कविराज, आज हमारा घर बहुत वर्षों के पश्चात् पवित्र हुआ।"

"माताजी, मुझे आशा नही थी कि इस शुष्क देश मे हमारा इतना सम्मान होगा।" इतना कह कर रसनिधि ने धनञ्जय को पुकारा—"धनञ्जय, देखो देवी आ गई।"

पुकार सुन कर सरोवर के कमल-पत्रो से दृष्टि हटा कर धनञ्जय निकट आ गया।

राष्ट्र-कूट-राजाओ के परंपरागत संस्कारो का अनुगमन करते हुए, लक्ष्मीदेवी ने बड़े गौरव से कहा—"भाई, यह घर तुम्हारा ही है; परन्तु मुझे एक प्रार्थना करनी है।"

धनञ्जय निकट खड़ा था। उसने पूछा—"क्या आज्ञा है, कहिए ?"

"इतनी कृपा कीजिएगा कि आपके काव्य-विनोद की चर्चा बाहर तक न जाने पावे। नही तो आपके समागम का लाभ बहुत ही कम उठाया जा सकेगा।"

भील्लम ने कहा—"देवी, यह क्या कह रही हो ?"

"ठीक कह रही हूँ। ऐसे अतिथि जितने भी अधिक दिन रहे, उतना ही अच्छा है। ऐसे लोगो के दर्शन ही कहाँ होते है ?" यह कहते हुए लक्ष्मी की वाणी मे कुछ विषण्णता आ गई।

भील्लम मौन हो गये; रसनिधि ध्यान से सुनता रहा। लक्ष्मी ने विलास को लक्ष्य करके कहा—"विलास, कवियो के दर्शन किये ?"

नीचा मुख करके हँसते हुए विलास ने कहा—"किये।"

"अच्छा, अब चलिए कविराज ! मध्यान्ह हो रहा है।"

"जो आज्ञा।"

"विलास, तू कहाँ जायगी ?"

"मुझे अभी ध्यान करना है ।"

भील्लम ने पूछा—"अच्छा कविराज, सब कवियो मे शिरोमणि कौन हैं ?"

धनंजय ने कुछ विचार करते हुए आँखे नचाकर कहा—"स्यून-देश के अधिपति महाराज भील्लम ।"

सब हँस पड़े ।

"मै ?"

"हाँ, जिनकी वाणी सुनकर समस्त कवियो की जिव्हा पर काव्य-नटी नृत्य करने लगती है, ऐसे रसेश्वर कहे जाने वाले मुञ्जराज को भी जिसने विजय किया हो, वह ।"

भील्लम गर्व से हँस पड़ा । यह कथन असत्य था, तो भी उसका हृदय प्रफुल्लित होगया; परन्तु उसकी स्त्री ने उस हर्ष को अधिक समय तक स्थिर न रहने दिया ।

"कविराज, तो यों न कहो कि कवि-शिरोमणि मृणाल हैं ।"

"क्यो ?"

"आपके स्यून-राज के परम-पूज्य है तैलपराज, और उनका गर्व गलित करने वाली हैं बहन मृणाल ।"

भील्लम का मुख रक्त-वर्ण हो गया; उसने कुछ क्रोध से लक्ष्मीदेवी की ओर दृष्टिपात किया । लक्ष्मी ने यह देख कर वार्त्तालाप का रुख बदल दिया ।

"कविराज, आपने विदर्भ देश के कवि भवभूति के काव्यों का अध्ययन किया है ?"

"आपने किस प्रकार उनका नाम जाना ?"

"जब मैं छोटी थी तब मेरे पिता के यहाँ कवि-गण उनके गुणों का कीर्त्तन किया करते थे। वे कहा करते कि कलिकाल में न तो ऐसा कवि हुआ, और न होगा।"

"रसनिधि उनके बड़े भक्त हैं।"

"अच्छा!"

"हाँ, इन्होंने उनके सब नाटकों का पाठ किया है।"

विलास ने पूछा—"माताजी, इस कवि की बात तो तुमने मुझसे कभी की ही नहीं ?"

लक्ष्मी ने निःश्वास लेकर कहा—"बेटी, तुमसे कह कर कहाँ जाती ?"

विलास कुछ समझ न सकी कि उससे कहने में क्या हानि है ? उस समय वह अधिक कुछ नहीं बोली। सबको नमस्कार करके राज-मन्दिर की ओर चली गई।

आठवाँ प्रकरण

सत्याश्रय

जब विलास मन्दिर मे पहुँची तब उसे ऐसा ज्ञात हुआ जैसे उसमें कोई परिवर्त्तन हो गया हो; इतना ही नही, उसे सूर्य मे नवीन तेज दीख पडने लगा, वृक्षो मे नवीन सुन्दरता; और ध्यान के लिए बैठते समय उसका हृदय आकुल मालूम होने लगा।

उसको धनञ्जय और रसनिधि बिलकुल अनोखे मनुष्य प्रतीत हुए। उनके सत्संग में संयम न था, न वाणी में गाम्भीर्य्य और न शब्दो मे विवेक ही। वे पापात्माओ जैसे स्वच्छन्द दीख पड़े; फिर भी उनकी वह रीति-नीति रुचिकर और विचित्र मालूम हुई। उसकी शिक्षा, उसके चारित्र्य की भावनाओ और उसके विचारो के आगे उसकी दृष्टि में वे दोनो तुच्छ, संयमहीन और स्वच्छन्द जान पड़े। इतने पर भी उसके हृदय मे यह विचार आया कि उनकी बातचीत वह फिर सुने, उनके मुख वह फिर देखे।

कभी-कभी विलास के हृदय मे लक्ष्मी देवी के प्रति एक विशेष सहानुभूति उत्पन्न हो जाती। यद्यपि वह बाहर से स्वस्थ दीख पडती; परन्तु अनेक बार लक्ष्मीदेवी से मिलने पर, उसकी बाते सुनने पर, उससे शाबाशी मिलने पर, उसके हृदय मे एक अज्ञात, एक अ-कल्पित भाव उत्पन्न हो जाया

करता। उन कवियो को देखकर भी उसके हृदय में ऐसा ही भाव उत्पन्न हो गया।

उसे रसनिधि पर दया आई। बेचारा रसिकता को मोक्ष मान रहा था। कैसा मोह? कैसा अन्धकार? कैसा अच्छा मनुष्य और कैसे भ्रम मे पड़ा हुआ था? इस पर भी वह दुःखी नहीं दीख पड़ता था। उसके हास्य मे, उसके शब्दो मे, उसके नेत्रो मे आनन्द था; शान्ति थी। ऐसी शान्ति तो अपने को जीवन-मुक्त समझने वाली मृणाल मे भी नही थी। क्या रहस्य है?

यह रसिकता क्या है? रस-सृष्टि उसके ज्ञान से बाहर थी; उसने उसका रङ्ग देखा और परखा न था। क्या उससे मोक्ष मिल सकता है?—शान्ति मिल सकती है?

उसे मुञ्ज का स्मरण हो आया। बहन मृणाल उसे पापाचारी कहती थी, परन्तु वह आनन्द और शान्ति की मूर्ति प्रतीत होता था। क्या पापाचारी के लिए यह शान्ति सम्भव है?

वह ध्यान करने बैठी; पर कर न सकी। उसका ध्यान रसनिधि और धनञ्जय की ओर लगा रहा।

उसे ध्यान हो आया कि उसकी माँ ने भी कविता सुनी थी, फिर किसलिए उसे नही सुनाई? लक्ष्मीदेवी कोई कलंकित तो थीं नहीं; तो भी उन्होने कवियो के काव्य का श्रवण किया था। कवियो मे ऐसी कौन सी बात थी जिसके कारण मृणाल बहन ने उनको देश से निर्वासित कर दिया था?

अन्तिम प्रश्न का उत्तर उसे सरल मालूम हुआ। ऐसे

स्वच्छन्द मनुष्य यदि देश मे वास करने लगें तो लोगो का शुद्ध और पवित्र जीवन भ्रष्ट हो जाय।

इन विचारो से उसे मालूम हुआ कि वह स्वयं पतित होती जा रही है। संयम के शुद्ध वातावरण में से सामान्य अधम जीवन के कुमार्ग की ओर अग्रसर हो रही है। तैलङ्गण की साम्राज्ञी होने का, अकलङ्क चरित जैसे शुद्ध प्रभावशाली वीर की अर्द्धांगिनी हाने का, और अपने चारित्र्य-बल से समस्त-संसार को शुद्ध करने का लेख उसके भाग्य में लिखा था। क्या यह मूर्खता उसे शोभा दे सकती है? यह विचार आते ही उसका मन ध्यान मे लग गया और कवियो के समागम से उद्भूत ऊर्मियाँ शमित हो गईं।

वह ध्यान के लिए आँखें बन्द करना ही चाहती थी कि सामने सत्याश्रय आता दीख पड़ा।

वह शान्त और दृढ़ भाव से चला आ रहा था। मुख पर कठोरता और निश्चलता थी। तैलङ्गण का भावी नरपति, पिता की आज्ञा शिरोधार्य्य करके, भावी अर्द्धाङ्गिनी को रिझाने के लिए आ रहा था। उसके मुख पर प्रेम का आवेश न था, और न गति मे उत्साह ही। मुख-मुद्रा पर केवल कर्त्तव्य-परायणता प्रकट हो रही थी।

उसे देख कर विलास तनिक सकपका गई, लज्जित हो गई। उसे शिक्षा मिली थी कि पति की चरण-रज का एक-एक कण पूजनीय है। एक-एक शब्द निर्वाण-मन्त्र है। अपने ईश्वर को सदेह आते देखकर उसे हर्ष हुआ। यह सब होने पर भी अचानक उसे ऐसा ज्ञात होने लगा जैसे अज्ञात में रसनिधि

उसकी दृष्टि के समक्ष आ गया हो। उसके हृदय में एक अस्पष्ट असन्तोष छा गया।

सत्याश्रय और रसनिधि दोनो इस प्रकार के मनुष्य थे कि एक के पश्चात् दूसरे को देखने पर उनके स्वरूप की भिन्नता का विचार हृदय मे आये बिना नहीं रह सकता था।

सत्याश्रय अधिक बलवान था। उसके मुख पर अधिक गौरव झलक रहा था; परन्तु उसके शरीर में रसनिधि की-सी छटा न थी। उसकी गति में रसनिधि का-सा उत्साह न था और न उसके मुख पर वैसा आनन्द और आवेश भी। कवि को देखकर आह्लाद की तरगे उठती थीं, और राजकुमार को देख कर देखनेवाला त्रस्त हुए बिना न रहता। एक मिलने वाले के हृदय का हरण करता था और दूसरा उसके हृदय पर अधिकार।

विलास को भान नहीं था कि उसका हृदय इस प्रकार की तुलना करके असन्तोष का अनुभव कर रहा है। उसको केवल एक अपरिचित विचित्रता मालूम हो रही थी।

कुमार सत्याश्रय शंकर का दर्शन करके विलास के निकट आया और उसको नमस्कार किया—"विलासवती, नमस्कार।" जैसे किसी देवी के आगे उसका भावुक भक्त स्वस्थ होकर नमन कर रहा हो।

विलास ने लजा कर कहा—"नमस्कार। विजय-लाभ कर आये?"

"हाँ। भगवान् पिनाकपाणि की कृपा से पिताजी की विजय हुई।"

"और मालव-राज पराजित हुए ?"

"हाँ । सत्य की जय हुई ।"

विलास ने गम्भीरता से पूछा—"आप कुशल पूर्वक तो हैं ?"

परन्तु तुरन्त ही रसनिधि के साथ किया हुआ स्वच्छंद वार्त्तालाप उसे स्मरण हो आया ।

"हाँ । मै एक आनन्द-दायक समाचार सुनाने आया हूँ ।"

"क्या ?"

"ईश्वर की कृपा हुई, तो अब हमारा विवाह हो जायगा।"

तनिक आवेश आ जाने के कारण विलास के मुख से निकल गया—"है ?"

सत्याश्रय ने शान्ति के साथ कहा—"हाँ, पिताजी की आज्ञा है ।"

विलास लज्जित होकर क्षण भर के लिए नीचे देखने लगी । दूसरे क्षण उसने पूछा—"बहन जी की क्या सम्मति है ?"

"उन्होंने तो कभी से मुहूर्त्त निश्चत करा रखा है ।"

विलास आगे कुछ न बोली ।

"विलासवती, तुम बहन जी की कसौटी पर सोलहो आने ठीक उतरी हो ।"

"अच्छा ?"

"हाँ । उन्हें निश्चय हो गया है कि तुम आहवमल्ल की पुत्र-वधू होने योग्य हो गई हो ।"

"अहोभाग्य !"

"सत्य है । साथ ही मेरा भी अहोभाग्य समझना चाहिए ।"

विलास ने इसका उत्तर नहीं दिया।

"तो मै अब जा सकता हूँ ?"

विलास ने कहा—"जैसी इच्छा।"

"तो जय शिव।" कहकर सत्याश्रय जिस स्वस्थता से आया था उसी स्वस्थता से वापिस लौट गया।

विलास को इन बातो मे कोई विचित्रता प्रतीत नहीं हुई; परन्तु किसी अज्ञात कारण से उसका हृदय खिन्न हो उठा। सोलह वर्ष हो गये, उसके हृदय ने प्रेम के आवेशो का कोई अधिक अनुभव नही किया था, और संयम की टेव के कारण हृदय सर्वदा स्वस्थ और निर्विकार रहता था; इस कारण उसे स्पष्ट-रूप से खिन्नता का अनुभव करना वड़ा विचित्र मालूम हुआ। परन्तु आज उसे इतने अधिक विचित्र अनुभव हुए थे कि उसने इस विचित्रता पर अधिक विचार नहीं किया।

उसका ध्यान निकट भविष्य मे होने वाले अपने विवाह पर गया। विवाह क्या है ? कैसे होता है ? उसे कुछ ऐसा ज्ञात था कि नाटक नाम के काव्यो मे विवाह की बात बहुत आती है। तब उन काव्यो मे किस प्रकार विवाह होता होगा ?

यद्यपि काव्य और कवि, दोनों को वह त्याज्य समझती थी, तथापि जिस बात का अनुभव वह स्वतः करने वाली थी, वह दूसरो को कैसा प्रतीत होता होगा, इसको जानने की उसके हृदय मे जिज्ञासा उत्पन्न हो गई। उसने बहुत प्रयत्न किये; पर वह इस जिज्ञासा का संवरण नहीं कर सकी। और, अन्त मे रसनिधि से पूछकर ज्ञान प्राप्त करने का उसने निश्चय कर लिया।

नवाँ प्रकरण

प्रथम मिलन

मृणालवती-सी संयमशीला के हृदय मे क्षोभ कहाँ स्थान पा सकता था ? किन्तु इस समय उसके मुख से प्रकट हो रहा था कि उसके हृदय में किसी अस्पष्ट क्षोभ ने घर कर लिया है। उसका साहस, उसका सांसारिक वियोग और मुञ्ज की अधमता के प्रति उसका तिरस्कार ज्यो-का-त्यो बना रहा, वरन् कुछ अंश मे बढ़ गया। फिर भी तैलङ्गण के शत्रु के सम्मुख जाने के विचार से वह तनिक अस्वस्थ-सी हो गई। इस अस्वस्थता के फल-स्वरूप उसका साहस कृत्रिम हो गया। मुञ्ज के प्रति उसका तिरस्कार अधिकाधिक बढ़ गया।

किसी अन्य बन्दी से मिलने का विचार भी मृणाल के मस्तिष्क मे नही आ सकता था; किन्तु मुञ्ज से मिलने का विचार उसे स्वाभाविक प्रतीत हुआ। मुञ्ज को कुचलवा देने की उसकी वर्षों से अभिलाषा थी। मुञ्ज की अधमता का दृष्टान्त उसे वर्षों से प्रिय लग रहा था। अपने विचार से वह अपने को सत्य का अवतार समझ रही थी। अवन्ति-पति उसकी दृष्टि मे असत्यावतार था। आज सत्य का विजय-ध्वज फहराना उसे परम कर्त्तव्य प्रतीत हुआ। पृथ्वी के पापियो मे अपने को श्रेष्ठ समझने वाले पुरुष को उसकी अधमता का

ज्ञान कराने से बढ़ कर और कौन-सा पवित्र और धार्मिक कार्य्य हो सकता है ?

मुञ्ज से स्वतः मिलने के लिए जाते समय उसके हृदय मे एक विचार उत्पन्न हुआ। उससे मिलने मे वह कलंकित तो नही होगी ? कलंक क्यो कर लग सकता है ? ऐसे नर-पिशाच से मिलना भी कलंक है—क्यो नही ? क्या इतने वर्षों की तपस्या निरर्थक है, कि वह एक पापी से वार्तालाप करके ही कलंकित हो जायगी ? अपने शुद्ध हृदय से सुरक्षित होकर भी वह क्यो ऐसा सन्देह कर रही है ?

धीरे-धीरे होठ पर होठ चढ़ाकर अपनी पवित्रता और वैराग्य की महत्ता से उन्मत्त वह अवन्तिका के निराधार नृपति से कारागार मे मिलने के लिए गई। प्रहरी मृणालवती को देखकर विमूढ़ हो गया और प्रकम्पित करो से उसने गुप्त बन्दी-गृह का द्वार खोल दिया।

स्थान छोटा था और पश्चिम दिशा की ओर के एक छिद्र से सूर्य्य का प्रकाश वहाँ पहुँच रहा था।

मुञ्ज सो रहा था। हाथो का तकिया लगा था और पैर एक दूसरे पर रक्खे थे। उसके अग अंग से अपूर्वता प्रकट हो रही थी; स्नायुओ का सुन्दर गठन स्पष्ट दीख रहा था। प्रचण्ड शरीर, अङ्गो की कान्ति और रंग की निर्मलता के साथ साथ कोई अज्ञात छटा उसके शयन में, उसके शरीर में प्रकट हो रही थी। बन्दीगृह के अन्धकार-रूपी शेष पर शयन करता हुआ वह लक्ष्मी-पति नारायण-सा प्रतीत हो रहा था।

मृणाल क्षण भर द्वार में खड़ी रहकर तीक्ष्ण दृष्टि से मुञ्ज को देखती रही। मुञ्ज का गर्व गलित हो जाने से वह उसे निराधार और चिन्ता-ग्रस्त देखने के लिए आई थी। इतनी दुर्दशा का अनुभव करके भी मुञ्ज को निश्चिन्त, निर्विकार सोये हुए देखकर मृणाल के हृदय मे उसके प्रति और भी तिरस्कार बढ़ गया।

तिरस्कार के आवेश मे वह वहाँ से जा ही रही थी कि मुञ्ज जाग पड़ा। धीरे से उसने अपनी बड़ी और सुन्दर आंखे खोली, छटा से मस्तक उठाया; धीर और मधुर हास्य उसके मुख पर प्रकट हो गया।

नेत्रो मे आकुलता नही थी; आनन्द था। हास्य मे क्षोभ नहीं था; मोहिनी थी।

मृणालवती जाते-जाते रुक गई। यदि वह चली जाती तो कायरता प्रकट होती और जिस कार्य्य के हेतु आई थी वह भी अपूर्ण रह जाता। उसे मुञ्ज के हास्य में अपमान-सा प्रतीत हुआ और इस कारण वह तीक्ष्णता तथा न्याय की मूर्ति बन कर पीछे लौट आई।

मुञ्ज के नेत्र प्रसन्नता से नृत्य कर रहे थे; उसके होठ हंस रहे थे। इतना ही नहीं; वरन् उसका संपूर्ण मुख-मण्डल आकर्षक और आह्लादक बन गया था।

"मृणालवती, यदि आई हो, तो तनिक ठहर जाओ।"

मुञ्ज के स्वर मे मृदुता थी, पवित्रता थी और मैत्री-भाव था। अनन्त सुख का आनन्द लेने तथा सब मनुष्यों को

स्नेह-दृष्टि से देखने वाले किसी विरले ही सन्तोषी का स्वर ऐसा हो सकता है।

मृणाल पर इस स्वर का और तो कोई प्रभाव न पड़ा; परन्तु अचानक अपना स्वर नीरस न निकल जाय इस भय से उसने उत्तर नहीं दिया। वह केवल उस ओर लौटी। मुञ्ज को हँसता देख कर उसके मुख पर तीक्ष्णता आ गई तथा क्रोध का भाव झलक आया।

मृणाल को बाल्यकाल से ही अपने प्रताप का भान था। कारण, उसके भ्रू-निक्षेप से ही समस्त तैलङ्गण-प्रदेश काँप उठता था। उस भ्रू-निक्षेप से सर्वदा होने वाले भयंकर प्रभाव को मुञ्ज पर देखने के लिए वह क्षण भर के लिए अनिमेष नेत्रो से उसकी ओर देखती रही।

परन्तु उत्तर मे मुञ्ज ने पुनः हँस दिया, कहा—"यदि आई हो तो तनिक अपना रूप निहार लेने दो। मैंने उसकी बड़ी प्रशंसा सुनी है।"

मृणालवती ने ये शब्द सुने; परन्तु उनका अर्थ तनिक भी उसकी समझ मे नही आया।

तपस्विनी, प्रभावशालिनी, निष्कलङ्किनी अस्पृश्या मृणालवती के राज्य मे ऐसी निर्लज्जता से कोई नही बोल सकता था। किन्तु इस समय ये शब्द उसके कानो मे डाले जा रहे थे और उसे सम्बोधन करके!

क्रोध से उसका मस्तक अस्थिर हो गया। नेत्र विकराल हो गये। उसने कहा—"पापी, इस दुर्दशा मे पड़कर भी तुझे ज्ञान नहीं हुआ कि किसके साथ कैसे वार्त्तालाप करना चाहिए?"

"कैसी दुर्दशा ?"

मृणाल तिरस्कार से बोली—"दुर्दशा ? पूछ अपनी कीर्ति से, पूछ अपने कवियो से और पूछ अपनी सेना से।"

मुञ्ज के मुख पर तनिक भी विषमता न आई । वही आनन्द झलक रहा था। वह फिर तनिक हँस पड़ा। बोला—"मेरी कीर्ति से ही तो तैलप की तपस्विनी बहन यहाँ तक खिंच आई है; मेरे कवियो के गान से ही तो मुझे देखने का तुमको मोह हुआ है और मेरी सेना के प्रताप से प्रतापान्वित होकर ही तो तुमने मुझे पकड़ने का प्रयत्न किया है।"

"और, कल तू कुत्ते को मौत मारा जायगा।"

"मुञ्ज जैसे नृपति का इससे बढ़कर कीर्त्तिकर मरण और क्या हो सकता है ?"

मृणाल चुप हो गई। जिस मनुष्य को वह अपनी सत्ता और प्रताप के भार से कुचल डालने के लिए आई थी, वह भूमि पर होते हुए भी सिहासन पर और बन्दीगृह मे होते हुए भी अपने महल मे आनन्द और स्वस्थता से बैठा हुआ प्रतीत हो रहा था। तथा निरंकुश आनन्द से बाते कर रहा था।

मृणाल के हृदय में और भी तिरस्कार बढ़ गया। सामान्य मनुष्य दुःख से अशान्त हो जाते है; किन्तु यह कैसा महान् पापाचारी है कि कारागार भी इसकी शान्ति को भंग नही कर सका।

"राक्षस, तुझे ज्ञात है, तू ने क्या क्या पाप किये हैं ?"

"मुझे जो भला मालूम हुआ, मैने सर्वदा वही कार्य्य

किया। इसमें पाप कैसा ?"

मृणाल अकुला गई। स्वच्छन्द आचरण ही उसके विचारानुसार पाप था। तनिक ठहर कर वह बोली—"क्या इच्छित कार्य्य करना पाप नहीं है ? इसी कारण तो तू सदेह नरक भोग रहा है।"

मुञ्ज ने तनिक आश्चर्य से नेत्र खोले। उसके नेत्रो में मद था, तेज था। मद और तेज ने मृणाल का ध्यान आकर्षित कर लिया।

"तुम नरक किसे कहती हो ?"

"नराधर्म, तेरी-जैसी स्थिति को।"

मुञ्ज हँस पड़ा। बोला—"मृणालवती, यह तुम्हारा भ्रम है ?"

"कैसे ?"

"स्वर्ग या नरक की मुझे पर्वाह नहीं है। परन्तु जो मै अनुभव कर रहा हूँ, उससे अधिक सुख स्वर्ग मे नहीं है और नरक में जाने से वह कम नहीं हो सकता।"

"यह असत्य मेरे आगे नही चल सकता।"

"मै असत्य किसलिये बोलूँगा ?"

"अपनी दुर्दशा छिपाने के लिए।"

"दुर्दशा ! कैसी दुर्दशा ? मै तो जैसा पहले था, वैसा ही अब भी हूँ।"

"कौन ?"

हँसकर नेत्रो से अमृत बरसाते हुए मुञ्ज ने कहा—"पृथ्वीवल्लभ।"

"अब तू पृथ्वीवल्लभ है ? पृथ्वीवल्लभ तो वहाँ महल में बैठा हुआ है।"

"कौन कहता है ?"

"सारा संसार।"

मुञ्ज ने निश्चिन्त्य-भाव से कहा—"तो संसार झख मारता है। जो सुख मैं अपने प्रासाद में प्राप्त करता था वही यहाँ भी अनुभव कर रहा हूँ। जो सुख मैं विजय में अनुभव करता था वही इस पराजय में भी मान रहा हूँ। पृथ्वी का जैसा वल्लभ तब था, वैसा अब भी हूँ।"

"निर्लज्ज, यह तो चित्त प्रसन्न करने का स्वप्न है।"

मुञ्ज ने स्वस्थता से कहा—"तुम स्वप्न समझती हो, पर जब तक मेरी वल्लभता स्थिर है, तब तक यह बात सत्य है।"

क्षण भर मृणाल देखती रही। सोचने लगी—इसकी निर्लज्जता की भी कोई सीमा है ? इसके पश्चात् वह बोली—"अभी तुझे तैलप के प्रताप का स्वाद चखना है।"

"प्रताप ! उस बेचारे का ?"

"उसके प्रताप में तुझसे अधिक तेजस्विता है।"

"कौन कहता है ? अपने हृदय से पूछो। तुम और वह मेरे प्रताप से चौंधिया जाते हो।"

"हम चौंधिया जाते हैं ? क्या बक रहा है ?"

"क्रोध न करो मृणालवती, इस चंचल जीवन को इस प्रकार क्यो खो रही हो ?"

"मुझे तेरा उपदेश नहीं चाहिए।"

"तभी तो ऐसी हो गई हो। मेरा उपदेश सुना होता तो इस प्रकार वल्कल धारण करके तुम्हें जीवन व्यतीत न करना पड़ता।"

तिरस्कार का त्याग करके मृणाल ने जिज्ञासा के भाव से पूछा—"और तुझे क्यो करना पड़ रहा है?"

पृथ्वीवल्लभ ने शरीर को लौहकाय भीम की भाँति ऐंठकर कहा—"मुझे? मै तो सदैव सृष्टि का रसपान करता रहता हूँ। मेरा एक भी पल दुखमय व्यतीत नही हुआ। एक भी प्रसंग जीवन का आनन्द लिये बिना नहीं बीता। एक-एक प्रसंग से, एक-एक पल से मैंने रस संचय किया है। क्या तुमने भी ऐसा जीवन बिताया है? मेरी अधमता, मेरी दुर्दशा की बात तुम क्या कर रही हो? जब यह रस-संचयन की शक्ति चली जायगी, मै तब की नहीं कहता; परन्तु जब तक यह मौजूद है तब तक तो मै पृथ्वीवल्लभ ही हूँ।"

मृणाल सुनती रही। पृथ्वीवल्लभ के शब्दो में गर्व था; परन्तु आडम्बर या ढोंग का नाम नहीं। एक-एक शब्द सत्य प्रतीत हो रहा था। मृणाल को एक अननुभूत अनुभव होने लगा। अपनी सत्ता स्थापित करने के बदले वह पृथ्वीवल्लभ की शान्त और आकर्षक सत्ता के प्रताप से प्रभावान्वित हो गई।

"तो मुञ्ज, तू मुझे पहचानता नही है।"

"पहचानने की मुझे क्या आवश्यकता? मै जानता हूँ, जो तुम हो।"

मृणालवती ने तनिक कठोरता से पूछा—"क्या हूँ ?"

"मान-खण्डिता, मानिनी ।"

होठ चबाते हुए मृणालवती ने पूछा—"क्या ?"

"मुझे वशीभूत करने के लिए आई थी और स्वयं वशीभूत हो कर जा रही हो । तुम सरीखी गर्विता को वश मे करने से बढ़ कर और क्या सुख हो सकता है ?"

इतना कह कर मुञ्ज खड़ा हो गया । उसके प्रचण्ड तेजस्वी शरीर की मोहनी चारो ओर फैल गई ।

दाँत पीसते हुए मृणाल ने कहा—"तू मुझे वश मे करना चाहता है ?"

मधुर स्वर मे मुञ्ज ने कहा—"नहीं, तुम स्वतः होना चाहती हो । मेरे निकट आकर तुमने भूल की । अब तुम कुछ और ही हो जाओगी, मृणालवती ! अब बिना सजीवन हुए न रहोगी !"

मृणाल ने मुञ्ज के शब्दो का स्पष्ट अर्थ न समझा । पृथ्वी पर पैर ठोक कर बोली— "मै देखती हूँ, अब तू कब तक जीवित रहता है ?"

"इस समय तो जीवित हूँ । आगे की क्या चिन्ता ?"

हृदय की आकुलता मिटाते हुए मृणाल ने कहा— "देखती हूँ, तुझे क्यो कर चिन्ता नहीं होती !"

"मेरे रोम-रोम में भी कीड़े पड़ जायँ, तो मुझे चिन्ता नहीं । चिन्ता तो तुम जैसी के लिए है कि जिसके एक-एक विचार से नरक की गन्ध आती है ।"

मृणाल कुछ क्षण स्थिर होकर देखती रही और बोली—"मुञ्ज, अभी तुझे बहुत कुछ अनुभव करना है, स्मरण रखना।" इतना कह कर वह महल की ओर लौटने लगी।

मुञ्ज हँस पड़ा। बोला—"यह कौन-सी बात है? जो आनन्द मिला, वही बहुत है।"

"हाँ, पूरा-पूरा आनन्द मिलेगा।"

इतना कह कर मृणालवती क्रोधावेश में चली गई। इस समय उसका मस्तिष्क स्थिर नहीं था।

जाते हुए उसने पृथ्वीवल्लभ का हास्य-युक्त मधुर स्वर सुना—"इससे बढ़कर और क्या होगा?"

दसवाँ प्रकरण

दया

मृणालवती वहाँ से तुरन्त ही महल मे पहुँची। उसके हृदय की स्थिति कुछ विचित्र हो गई थी।

उसे प्रतीत हुआ कि वह स्वस्थ है; पर उसका रक्त खौल रहा था। हृदय मे किसी अपरिचित वस्तु ने प्रवेश कर लिया था। जब वह मुञ्ज से मिलने गई तब और थी और इस समय कुछ और ही मालूम हो रही थी।

उसने सोचा कि अधमता के अवतार मुञ्ज के संसर्ग से उसकी शुद्धि को कलंक लग गया है, इसी कारण उसकी दशा ऐसी हो गई है। और पुनः शुद्धि प्राप्त करने के प्रयत्न की अपेक्षा उसके हृदय मे मालव पति के प्रति तिरस्कार बढ़ रहा था। इसी से वह बार-बार उसकी दृष्टि के समक्ष आ जाता था।

उसने संसर्ग-दोष दूर करने के लिए स्नान किया और मानसिक शुद्धि प्राप्त करने के लिए ध्यान करने बैठी। वह मुञ्ज पर बड़ी क्रोधित हो उठी थी, और उस क्रोध को—रजोगुण का आविर्भाव हो जाने के कारण—निकाल देने की चेष्टा में वह बैठ गई।

उसकी-सी जीवन-मुक्त के पास क्रोध का क्या काम? उसे तो निर्विकार-दृष्टि से उसके पाप-पुण्य का हिसाब लगाकर

ही उसके साथ व्यवहार करने की आवश्यकता थी।

मृणाल का क्रोध अस्वाभाविक था। उस क्रोध की अपेक्षा मुञ्ज अधिक दया का पात्र था। उसकी-सी जितेन्द्रिय स्त्री क्या मुञ्ज पर दया नही कर सकती? बात ठीक थी। क्रोध को शान्त करने के लिए मुञ्ज के विषय मे ही विचार कर के उस पर दया लानी चाहिए। मुञ्ज ध्यान से अलग ही न होता था; अतएव यह बात सरल थी।

उसे अपने संयम का ठीक-ठीक ध्यान आया। थोड़े ही समय मे उसने क्रोध को दूर कर दिया और मुञ्ज को सहानुभूति और दयार्द्र दृष्टि से देखने लगी। परन्तु किसी अज्ञात कारण से उसका हृदय चुनमुना रहा था।

यह किसलिए चुनमुना रहा है? विचार करने पर इसका कारण मालूम हो गया। इस प्रकार दया करते हुए वह पापी के प्रति सच्चा न्याय नही होने दे रही थी। वह पापी था। उसने उस जैसी स्त्री का भी अपमान किया था! उसे अपने मान अपमान की चिन्ता नहीं थी। फिर भी पाप का दण्ड तो मिलना ही चाहिए।

इस मनुष्य ने कैसी निर्लज्जता की थी? कैसे पाप के पङ्क मे वह पड़ा था? उसे अपने का भी ज्ञान नहीं था, कि कहाँ है? उसे इसका ज्ञान करा देना चाहिए; नही तो यह न्याय नही कहलायेगा।

कौन-सा दण्ड दिया जाय? इसी समय पुरानी रीति उसे स्मरण हो आई। वही ठीक मालूम हुई।

।राजित राजाओ को काठ के पिञ्जरो में बन्द करके राज-महल के सामने वाले चौक में रखा जाता था और लोगो के उपहास से उनके गर्व को गलित कराया जाता था । मुञ्ज को यही दण्ड क्यो न दिया जाय ?

वह उठी और तैलपराज के पास गई । तैलपराज के हृदय मे यह बात पैठ गई और सत्याश्रय द्वारा तैयार करवाये हुए काष्ठ-पिञ्जर में मुञ्जराज को रखने के लिए उसने आज्ञा दी।

मृणाल को शान्ति मिली । अब न्याय हुआ । मुञ्ज के संबंध में वह विचारने लगी कि अब इसकी पृथ्वी-वल्लभता कहाँ गई ?

इसी समय उसने यह भी विचारा कि, यह आघात वह किस प्रकार सहन करता है, देखना चाहिए ।

इसमे कौन-सी बुराई थी ? वह बेचारा दया का पात्र तो था, केवल न्याय का दण्ड सहन कर रहा था; परन्तु उसकी वास्तविक स्थिति पर विचार करना क्या उसकी-सी बुद्धिमती का कर्त्तव्य नही था ?

क्यो नहीं ?

ग्यारहवाँ प्रकरण

रसनिधि की खिन्नता

विलासवती को इस वातावरण मे कुछ अज्ञात मधुरता-सी मालूम हुई। उसके मृतप्राय अन्तर में जीवन-सा आने लगा; जैसे किसी ने उसे अमृत-पान करा दिया हो। उसका हृदय अभी पिघला नहीं था। उसके हृदय की दशा ठीक वैसी थी, जैसी सूर्य्य-किरणो के प्रथम स्पर्श से प्रस्फुटित होकर कुसुम-कलिका की हो जाती है। वह समझ ही नही सकती थी कि यह सब क्या हो रहा है। पर जो हो रहा था वह बड़ा ही आह्लाद उत्पन्न करने वाला था, इसमे कोई संदेह नहीं।

अपना विवाह निश्चित हुआ देखकर वह और भी अधिक आह्लादित हो रही थी। वह सनातन रीति के अनुसार सत्याश्रय को हृदय से वर चुकी थी; उसके चरणो की पूजा करती थी; उसकी अर्द्धांगिनी बनने के स्वप्नो का अनुभव करके ही वह जीती थी। इस समय उन स्वप्नो मे भी एक अज्ञात ज्वाला उत्पन्न होगई। यह ज्वाला अस्पष्ट थी। कारण कि संसार की आकांक्षाओ का उसे ज्ञान नहीं था।

रसनिधि से सुनी हुई रसिकता से वह अकुला गई। सोचने लगी—'आखिर यह रसिकता है क्या ?' इसके जानने की उसे बड़ी इच्छा हुई। उसने इस इच्छा को

दबा देने का प्रयत्न किया। पर कहीं यह कलंक न समझा जाय ? समय मिलने पर उसने बहन मृणाल से भी पूछने का निश्चय किया। परन्तु आज कोई दृष्टि नही पड़ रहा था।

उसने फिर विचारा—इसके जानने मे क्या हानि है ? माताजी ने भी नाटक सुने हैं। पिताजी ने किसी समय अनेक सुकवियो को अपने यहाँ रखा है। तब इन कवियो से मिल कर प्रश्न हल करना क्या बुरा है ?

प्रति दिन की भांति अभी मृणालवती नहीं आई थी; अतएव वह ईश्वर की आराधना छोड़कर अपनी जिज्ञासा सन्तुष्ट करने के प्रयत्न में संलग्न हो गई।

कुछ समय तक वह शान्त होकर बैठी रही, कि कहीं मृणाल न आ जायँ; पर जब उनके आने की आशा न रही, तब वह साहस करके उठी। आज उसके लिए विजय-प्रसंग था। आज उसे नियमोल्लंघन का दण्ड देने वाला कोई नही दिखलाई पड़ता था।

इन नये विचारो को वह अपनी माता के समक्ष प्रकट करके उत्तर सुनना चाहती थी। इसलिए वह अपने पिता के महल की ओर चली।

भीलम का महल राज-महल का ही एक खण्ड था और दोनो के उद्यान भी पहले एक मे मिले हुए थे; किन्तु आज कई वर्षो से बीच में एक दीवार खड़ी करके उसके दो खण्ड कर दिये गये थे। उद्यान की इस दीवार में उस ओर जाने के लिए एक छोटा-सा द्वार था। उसी द्वार से विलास अपने पिता के महल में जा रही थी।

सन्ध्या हो चली थी। सूर्य्य के मन्द-मधुर सुनहले प्रकाश से उद्यान शोभायमान हो रहा था। विलास क्षण-भर के लिए ठहर गई। आज उसे इस उद्यान मे बड़ी रमणीयता दीख पड़ रही थी।

उद्यान के मध्य में वृक्षो का एक झुण्ड था। उसके निकट पहुँचते ही भूमि पर एक मनुष्य सोया हुआ उसे दिखलाई पड़ा।

विलास ने पूछा—"कौन है ?"

सोये हुए मनुष्य ने आँखे मलते हुए तुरन्त चारो ओर देखा। विलास ने उसे पहचान लिया। कहा—"कौन कविराज ?"

रसनिधि ने कहा—"हाँ।"

विलास कुछ हिचक गई। उसे इस समय रसनिधि से भेट हो जाने की आशा नही थी।

"आप क्या कर रहे है ?"

"कुछ नहीं। भीहमगाज को समर्पण करने के लिए एक अष्टक बना रहा था।"

विलास ने हँसकर पूछा—"आप लोग दिन भर कविता ही बनाया करते है ?'

रसनिधि ने कुछ दुखित स्वर मे कहा—"नहीं तो।"

विलास ने उसके मुख की ग्लानि पर दृष्टिपात करते हुए पूछा—"आपको यहाँ किसी प्रकार की असुविधा तो नही है ? किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं है ? किसी वस्तु की आवश्यकता हो, तो तुरन्त कहिएगा।"

सिर हिलाते हुए रसनिधि ने कहा—"मुझे जिस वस्तु की आवश्यकता है, उसे तुम किस प्रकार दे सकोगी ?"

"किस वस्तु की आवश्यकता है ? जिस वस्तु के लिए आप पिताजी से कहिएगा, वह तुरन्त मिल जायगी।"

"बहन विलास, अभी तुम बालिका हो। भला मेरी इच्छित वस्तु कहाँ से मिल सकती है ? कहाँ मालवा और कहाँ तैलङ्गण !"

"कविराज, तैलङ्गण में किस बात की कमी है ? आपने अभी कुछ देखा नहीं है, इसी से ऐसा कह रहे हैं।"

"नहीं, यह बात नहीं है। तैलङ्गण चाहे स्वर्ण-निर्मित ही क्यो न हो, मेरे किस काम का ? मुझे तो अपनी अवन्तिका के प्रिय पुरजन, महाकालेश्वर का गगन-भेदी घण्टा-नाद, और अपने पिता की पुनीत दाह भूमि ही प्रिय है। वह सब कहाँ प्राप्त हो सकता है ?"

"यही तो माताजी कहा करती है। आप भी वही कह रहे है। उनको भी स्थून देश के बिना चैन नहीं है।"

"सत्य है।"

"पर तुम्हे किस बात का दुःख है ? माताजी एक समय महारानी थीं, इसलिए उन्हे दुःख होता है। पर तुम तो वहाॅ भी कवि थे और यहाँ भी हो। मुञ्जराज की अपेक्षा भील्लमराज तुम्हारा अधिक आदर करेंगे।"

रसनिधि ने फिर म्लान-वदन से हॅसते हुए कहा—"विलासवती, पर-जनो की मित्रता से स्वजनो की सेवा ही श्रेष्ठ है।"

"मै इसका समर्थन नही कर सकती।"

"कारण, तुमने स्वजन और पर-जन के बीच भेद नही समझा है।"

"आप विवाहित है ?"

रसनिधि ने विचार करके कहा—"हां।"

"तब वही स्मरण आ रहा होगा ?"

"हां। मुझे तुम-जैसी त्याग-वृत्ति का सेवन थोड़े ही करना है।"

"देखो, उस समय मै क्या कह रही थी ? त्याग-वृत्ति का सेवन न करने ही से तो तुम्हे दुःख का अनुभव हो रहा है।"

"विरह मे दुखी होने के बदले निष्ठुर बन कर प्रेमी-जनो को भूल जाने मे मै कोई बड़ाई नही समझता।"

विलास कुछ समझ न सकी। उसने अपना पैर आगे बढ़ाया। दोनो धीरे-धीरे भील्लमराज के महल की ओर चले।

"विरह किसे कहते है ?"

"बिना प्रेम के समझे विरह किस प्रकार समझा जा सकता है ?" इतना कहकर रसनिधि आश्चर्य से उस अबोध बालिका की ओर देखने लगा।

विलास ने कहा—"कविराज, मेरी बात मानकर आप थोड़ी तपस्या कीजिए। आपका चित्त शान्त हो जायगा।"

रसनिधि मस्तक हिलाकर बोला—"ऐसी चित्त की शान्ति का मै क्या करूँगा ? जब चित्त अशान्त है और अशान्त होने का कारण भी है, तब किसलिए यह कुप्रयत्न किया जाय ? तुम्हारी ही अवस्था की मेरी स्त्री है। वह बेचारी

रात-दिन अश्रु बहाती होगी। उसको एक-एक क्षण विषम बन गया होगा। उसे तो ऐसा दुःख सहन करना पड़े, और मैं स्वार्थी शान्ति के निमित्त तपस्या करूँ—निष्ठुर बन जाऊँ? जो सुख दे, उसके लिए दुखी होना भी एक आनन्द है।"

विलास ने कृपा-पूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"तब आपको दुख मे भी सुख का अनुभव होता है?"

"नही—"

"तब?"

"दुखी न होने के लिए मै अपने हृदय के निर्झर को सुखा डालूँ, तो फिर वह कभी सुख-सिक्त नही होगा।"

"यह भ्रम है। सुख, अर्थात् दुःख का अभाव।"

रसनिधि ने तनिक क्रोध से कहा—"कौन कहता है? तुम यह जानती ही नही, कि सुख किसे कहते है। सुख का अर्थ केवल दुःख का अभाव नही है; केवल सन्तोष ही नहीं है; सुख है शरीर और मन की ऊर्मियो का नृत्य। प्रातःकालीन पक्षियो की किलोलें देखी है? उसका नाम सुख है।"

"यह सुख किस प्रकार प्राप्त हो सकता है?"

रसनिधि ने क्षण भर उसके मुख की ओर देखकर कहा—"जब तुम्हारा विवाह होगा, तब ज्ञात हो जायगा। तुम्हारा विवाह कुंवर सत्याश्रय के साथ होना निश्चित हुआ है न?"

"हाँ।"

"तो उन्हें देखकर तुम्हारा हृदय थिरक-थिरककर नृत्य नहीं करने लगता?"

"किसलिए ? वे भी संयमी हैं और मै भी ।"

"उनका स्पर्श करके, उनके शब्द सुन कर, तुम्हारे अन्तर को शान्ति नहीं मिलती, प्रसन्नता नहीं होती ?"

"कभी-कभी होती है ।"

रसनिधि बोला—"तो विलासवती, सुख और दुःख का अनुभव तुम्हें किस प्रकार हो सकता है ?"

विलास हँस पड़ी ।

"मुझे समझाइए ।"

"तुम्हारा हृदय शून्य होगया है । तुम किस प्रकार समझ सकती हो ? लो, महल आगया, जाओ ।"

"कविराज, क्या आपको मुझसे वार्त्तालाप करना भला नहीं मालूम होता ? आपका चित्त अस्वस्थ है—अवन्तिका मे लगा हुआ है । आप दुखित होते है, यह मुझे ठीक नहीं लगता ।"

"नहीं विलास, यह बात नही है । जब तुम मेरे समक्ष रहती हो, तब मै अपना सब दुःख भूल जाता हूँ ।"

विलास ने एक वृक्ष के थाले पर बैठकर कहा—"तो मुझे आपसे कुछ पूछना है ।"

खिन्न-वदन से हँसते हुए रसनिधि ने कहा—"पूछो ।"

———

बारहवाँ प्रकरण

सह-धर्माचार

"किन्तु किसी से कहियेगा नहीं।"

"मै किससे कहने जाऊँगा ?"

"यदि मेरी माताजी को पता लग गया, तो वे अप्रसन्न होंगी।"

"तो ऐसी बात मुझसे क्यो पूछती हो ?"

विलास क्षण-भर मौन रहकर बोली—"ऐसा कोई दूसरा नहीं है, जिससे पूछूँ।"

"अच्छा, क्या पूछना चाहती हो ?"

"आप विवाहित है ?"

"हाँ।"

"विवाहित होने पर मुझे किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए ?"

रसनिधि जोर से हँस पड़ा। बोला—"तुम क्या सोच रही हो ?"

विलास इस हास्य का कारण नहीं समझ सकी। बोली—"शास्त्र में तो सह-धर्माचार करने के लिये कहा गया है।"

रसनिधि फिर हँस पड़ा। बोला—"तो बस, ठीक है।"

"परन्तु सब ऐसा कहाँ करते हैं ?"

हँसते-हँसते रसनिधि ने कहा—"जिस प्रकार मनुष्य की जातियाँ भिन्न-भिन्न है, उसी प्रकार सहधर्माचार की विधियाँ भी भिन्न-भिन्न है।"

"वह किस प्रकार ?"

"हमारी अवन्तिका नगरी में एक लकड़हारा रहता है। वह स-पत्नीक ताण्डव-सहधर्माचार करता है।"

विलास मौन होकर देखती रही।

"प्रातः, मध्यान्ह और सायंकाल—एक दूसरे को मारते है।"

विलास हँस पड़ी। "फिर" ?

"फिर क्या ? दूसरा उदाहरण एक विप्र का है।"

"वह क्या ?"

"उसका नाम है सरस्वती-सहधर्माचार। वह और उसकी स्त्री, प्रतिदिन एक दूसरे की सात पीढ़ियाँ कोसा करते हैं।"

"नहीं, आप विनोद कर रहे है ?"

"विनोद नहीं कर रहा हूँ, सत्य कहता हूँ। परन्तु तुम्हे तो कई प्रकार के सहधर्माचार सुनने है न ?"

"हाँ।"

"तो तीसरे का नाम है—स्वेच्छा-धर्माचार।"

"अर्थात ?

"जिसे जो ठीक जान पड़े सो करे।"

"यह कहीं सह-धर्माचार कहला सकता है ?"

"और क्या। विवाहित होने पर जो किया जाय वही सह-धर्माचार है।"

"तो कुछ अच्छे भी सह-धर्माचार हैं, या सब ऐसे ही हैं ?"

"है क्यों नहीं। इसके पश्चात् है स्वयंभू-सहधर्माचार।"

"अर्थात् ?"

"एक पक्ष धर्म का आचरण करता है और दूसरा उसकी कोई परवाह नहीं करता।"

"यह तो बहुत बुरा है।"

"किन्तु अधिकांश लोगों को यही प्रिय है।"

"क्यों ?"

"अधिकतर स्त्री धर्माचरण करती है और पुरुष—"

"हाँ, पुरुष क्या ?"

"जो चाहे करे।"

"यह कैसी अधमता है ?"

"इसमें अधमता की कौन सी बात है। धर्म की गाड़ी को एक खींचता है, और दूसरा उसमें बैठता है।"

"और ?"

"और क्या, एक शुष्क-सहधर्माचार है।"

"अर्थात् ?"

"स्त्री-पुरुष दोनों शास्त्रानुसार व्यवहार करते हैं, परन्तु न उसमें रस होता है, न प्रेम और न आनन्द।"

"तो इससे क्या ?"

"यह भी अधम प्रकार का ही आचरण है।"

"नहीं, यही आचरण श्रेष्ठ है।"

"विलासवती, आनन्द अथवा प्रेम-रहित सहधर्माचार का अर्थ क्या है, तुम जानती हो ?"

"हाँ। महाराज और जक्कलादेवी का ऐसा ही शुद्धाचरण है।"

"तब तो उन जैसे अभागे और दुखी स्त्री-पुरुषो का मिलना कठिन है।"

"तो सच्चा धर्माचार कौन-सा है ?

"जहाँ अन्योन्य अखण्ड प्रेम हो, एक दूसरे के प्रति अनन्त रस बह रहा हो, और अहोरात्र एक-दूसरे के नयनो मे, एक दूसरे के स्पर्श मे आनन्द वास करता हो—उसीका नाम सहधर्माचार है।"

विलास अकुलाकर रसनिधि की ओर देखने लगी और बोली—"आप तो सब उलटी ही बाते करते है।"

"नहीं, तुम्हे सब उलटी शिक्षा दी गई है।"

"तो एक बात पूछ सकती हूँ ?"

"आनन्द से।"

"आपका सहधर्माचार किस प्रकार का है ?" विलास यह प्रश्न करके पछताने लगी। उसे राज-कुमारी के पदानुसार परिजनो से इच्छित बाते पूछने की टेव पड़ गई थी। परन्तु रसनिधि मे एक अ-कल्पित गौरव झलक रहा था। विलास ने सोचा—'मेरा प्रश्न कहीं उसे बुरा तो नहीं लगा ?'

रसनिधि के नेत्र गम्भीर हो गये, उनमे मधुरता आगई।

"विलासवती, मै तो एक ही सहधर्माचार पसन्द करता हूँ।"

"कौनसा !"

"अन्तिम।"

इतना कह कर उसने एक निःश्वास लिया। विलासवती रसनिधि के स्नेह-सिक्त मुख की ओर देखने लगी। रसनिधि के मुख पर उसे अनिर्वचनीय और अपरिचित भाव दीख पड़े।

"आपकी स्त्री का नाम क्या है ?"

"उदयामती।"

"नाम तो बड़ा सुन्दर है।"

रसनिधि तनिक हँस दिया।

"उन्होने काव्यो का अध्ययन किया है ?"

"वह काव्यो की रचना करती है ?"

"ओहो ! तब तो न जाने कैसी होगी।"

"जैसी देवताओ को भी दुर्लभ हो।"

विलास कुछ मौन हो गई, और विचार मे पड़ गई। फिर बोली—"क्या मुझे भी आप यह सब सिखा देंगे ?"

रसनिधि हँस पडा।

विलास ने दूसरे ही क्षण कहा—"मै कोई काव्य सुनना चाहती हूँ।"

"मृणालवती अप्रसन्न होगी।"

"वे क्यो कर जान पायेगी ?"

"तो मुझे कोई बाधा नहीं है। क्या सुनोगी ?"

"माताजी किस कवि के विषय मे कह रही थीं ?"

"महाकवि भवभूति के विषय में।"

"उनका कौन सा काव्य आपने पढ़ा है ?"

"सब ही पढ़े है। तुम कौन-सा सुनना चाहती हो ?"

"माताजो 'मालती-माधव' का नाम ले रही थीं।"

रसनिधि ज़रा हिचकिचाया। बोला—"अच्छी बात है। तो कब सुनोगी ?"

"समय निकालूंगी। समय मिलते ही मै आपके पास आऊंगी।"

तेरहवाँ प्रकरण

लक्ष्मीदेवी का रणभूमि में प्रवेश

रसनिधि ने खिन्नता से मस्तक नवा लिया। जब विलास ने यह देखा, तो उसका हृदय द्रवित हो उठा। बेचारे को कैसा कष्ट है! और स्त्री की भी कैसी दशा है?

बिलकुल मेरी ही जैसी। एकान्त अवन्तिका का वास! बेचारी पति-वियोग मे मर रही होगी। उस बेचारी को त्याग-वृत्ति की शिक्षा किसने दी होगी? वह कदाचित ही सोचती होगी कि संसार मिथ्या है। मेरा विवाह हो जाय, और सत्याश्रय दूर देश में कारागृह-दण्ड भोग करे, तो मेरी क्या दशा हो?

विलास बहुत देर तक अपने हृदय में यही विचार करती रही। बेचारी कोमल हृदया कवियित्री उदयामती के दुःख ने उसके संयमी हृदय को भी दुखी बना दिया। और, उदया का पति भी कैसा सुन्दर, कैसा विद्वान था! ऐसे पति के लिए कौन स्त्री दुखी न होगी? मेरी अपनी बात तो निराली है; परन्तु दूसरे की क्या स्थिति हो सकती है? इस प्रकार के विचारो के आवागमन से उसकी आँख नहीं लगी। अन्त में उसने खिड़की खोल कर बाहर देखा।

रात्रि शान्त थी। उद्यान मे चाँदनी छिटक रही थी। रसनिधि उद्यान में टहलता हुआ अपने मित्र धनञ्जय से बातें

कर रहा था। अचानक विलास की दृष्टि उसी ओर जा पड़ी। वह एकाग्रता से देखने लगी। कल्पना करने लगी कि ये लोग क्या और कौन सी बात कर रहे होंगे ? अचानक नीचे वाला द्वार खुला और एक स्त्री बाहर निकली। विलास विस्मित और स्तब्ध होकर वहीं खड़ी रह गई।

उसने लक्ष्मीदेवी को तुरन्त पहचान लिया। वह माता कह कर पुकारने के लिए मुँह खोलने ही वाली थी, कि भय से मौन हो गई। यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि लक्ष्मीदेवी दोनो कवियो से शयन करने को कहने जा रही है। विलास ने धीरे से खिड़की बन्द करली और सो जाने का फिर प्रयत्न करने लगी।

लक्ष्मीदेवी होठ पर होठ रखे खड़ी थीं। महासामन्त तैलपराज के पास गये थे। वह उनको बाट जोहते-जोहते थक गई, फिर खिड़की से कवियो को देख कर नीचे चली आई। वह केवल मिलने के लिए ही नही आई थी। पलको को चढ़ा कर घड़ियो उसने कुछ विचार किया। वह एक निश्चय पर पहुँची। उस निश्चय को पूर्ण करने के लिए ही वह बाहर निकली थी।

वर्षों से एकत्र हुई विविध वृत्तियाँ इस समय केन्द्रित हो गई थी। विविध विचारो की माला से एक जप आरम्भ हो गया था। धीर किन्तु निश्चयात्मक पद-चारण करते हुए स्यूनराज की पटरानी ने रणाङ्गण मे प्रवेश किया।

वह तनिक बढ़ कर, खड़ी रह गई। रसनिधि और

धनञ्जय किसी के पदो की आहट से चौक पड़े और मौन होकर ऊपर देखने लगे।

लक्ष्मी ने धीरे से कहा—"कविराज !"

दोनो कवि एक-दूसरे की ओर देखने लगे।

धनञ्जय बोला—"क्या आज्ञा है माताजी ?"

लक्ष्मीदेवी ने चारो ओर देखकर कहा—"अभी तक जाग रहे हो ? सोये नहीं ?"

रसनिधि बोला—"अपरिचित स्थान में शीघ्र निद्रा नही आती।"

लक्ष्मीदेवी ने धीमे स्वर मे कहा—"कविवर ! मुञ्जराज को मार डालने की आज्ञा मिल गई है।"

दोनो आश्चर्य से बोल उठे—"हे !"

"हाँ।"

दोनो कवियो ने एक निःश्वास लिया। रसनिधि के होठ फड़कने लगे। धनञ्जय ने मस्तक नवा लिया।

"क्यो धनञ्जय, क्या विचार कर रहे हो ?"

"माता जी, मेरा सूर्य्य अस्त हो गया।"

"अभो समय है।"

सब मौन रहे।

लक्ष्मीदेवी निकट आई और धीरे से कहने लगी—"उनको मुक्त करने का साहस है ?"

धनञ्जय घबरा कर पीछे हट गया; पर रसनिधि ने तीक्ष्णता से ऊपर देखा और क्षण-भर मे लक्ष्मीदेवी के हृदय

के भावो को जान लिया। लक्ष्मीदेवी हँस पड़ी और बोली—"मै तो हँसी कर रही हूँ।"

रसनिधि बोला—"माता जी, आप हँसी कर रही है; परन्तु हमारी आन्तरिक अभिलाषा है। क्या करे ? पराया देश है, पराये मनुष्य है। अपना दुःख किससे कहे ? हम तो बन्दी है।"

"तुम वन्दी कहाँ हो ?"

"हम नही है तो क्या हुआ ? पर हमारा श्वास, हमारा प्राण, मयूरासना भगवती सरस्वती का प्यारा हमारा राजा, कैसी दुर्दशा मे है ! क्या यह कम दुःख की बात है ?"

"यह बात आज अखर रही है, कल विसर जाओगे।"

"माताजी, कारागृह का कलंक-चिह्न कभी भूला जा सकता है ? और वह कभी दूर हो सकता है ?"

लक्ष्मीदेवी का मुख म्लान होगया।

प्रत्येक-शब्द पर भार देते हुए रसनिधि ने कहा—"आप स्वतंत्र है, सुखी है।"

रानी ने तनिक विषण्णता से पूछा—"तुम्हे कैसे मालूम हुआ, कि मै सुखी हूँ ?"

"आप तैलपराज की महारानी जक्कलादेवी की बहन है, उनके महासामन्त की पत्नी है। आपने कहाँ पराधीनता को सहन किया है, कारागृह का कष्ट भोगा है, जो आपको हमारे स्वामी पर दया आये ? क्या करें; पराया देश है, कोई सहायक नहीं है, नही तो—" इतना कह कर रसनिधि मौन होगया

"हाँ-हाँ, नहीं तो क्या करते ?"

"जो आपने कहा है वही करते; मुञ्जराज को छुड़ाते।"

"रसनिधि, भला तैलपराज के पञ्जे से कोई निकल सकता है ?"

"सहस्र हाथो वाला सहस्रार्जुन भी जब पराजित हो गया, तो इस दो हाथ वाले तैलप की क्या बिसात है ?"

लक्ष्मीदेवी हँसते हुए वार्त्तालाप करने का प्रयत्न कर रही थीं; किन्तु फिर भी उनमे गम्भीरता आ गई। वह बोलीं—"कविराज, यह काव्य-रचना का कार्य्य नहीं है।"

"नहीं माताजी, यह तो कर्तव्य मे काव्यो के साक्षात्कार करने का कार्य्य है।"

लक्ष्मीदेवी ने हँसते हुए कहा—"तब तो करना चाहिए।"

रसनिधि ने धीरे से पूछा—"कठिनाई केवल यही है कि हमको यहाँ के किसी परिचित मनुष्य का साहाय्य प्राप्त नही है। क्या आपसे ऐसी आशा की जा सकती है ?"

लक्ष्मीदेवी ने रसनिधि के कहने का तात्पर्य समझ लिया। उन्होने कहा—"साहाय्य तो भोलेबाबा से सदा ही प्राप्त हो सकता है। हमारे राज-महल के मन्दिरवाले भोलेबाबा पर लोगो का बड़ा विश्वास है। यदि वहाँ जाकर मुञ्जराज उनको एक बिल्व-पत्र चढ़ायें, तो वह दूसरे ही क्षण आकाश मार्ग से अवन्तिका पहुँच जाँय, ऐसा उनका प्रताप है।"

रसनिधि इन शब्दो का अर्थ समझने के लिए, नत-मस्तक होकर क्षण भर नीचे देखता रहा। पश्चात् बोला—"बस, यही न ? आपका विश्वास है ? पर यह हो कैसे सकता है ?

भगवान् शूलपाणि साधन जुटा दे, कुदाली-फावड़ा भेज दे, तब तो ?

"रसनिधि, तुम्हारी कल्पना-शक्ति बड़ी तीव्र है।"

"बिना उसके मैं कवि कैसे हो जाता ? अच्छा, माताजी, भगवान् शंकर को प्रसन्न करने का कोई उपाय बतलाइये।"

"हृदय मे श्रद्धा रक्खो।"

"हमारे लिये तो स्थूनाधिप की महारानी ही साक्षात् श्रद्धा का अवतार है।"

धनंजय बीच ही मे बोल उठा—"यह श्रद्धा सर्वदा फूले फले।"

लक्ष्मीदेवी ने भवें चढ़ाकर कहा—"रसनिधि, वज्र जैसा हृदय है ?"

"है।"

"तो इधर आओ।"

बिना बोले लक्ष्मी और रसनिधि एक दूसरे के शब्दो का अर्थ समझ गये। आगे-आगे लक्ष्मी और पीछे दोनो कवि, इस प्रकार तीनो जने महल के एक एकान्त भाग की ओर मौन-मुख चलने लगे।

महल का एक खण्ड जीर्ण हो गया था। उसका सुधार हो रहा था। लक्ष्मीदेवी उसी ओर गईं। कुछ ही दूर एक वृक्ष के नीचे फावड़े, कुदाली इत्यादि रखे हुए थे। लक्ष्मी ने अंगुली उठाकर संकेत से उन्हें दिखलाया और रसनिधि ने सब कुछ समझकर स्वीकृति-निदर्शक सिर हिला दिया।

वहाँ से थोड़ी दूर पर वृक्षो के समूह मे एक बावड़ी

थी। लक्ष्मी दोनो कवियों को उसके निकट ले गई।

लक्ष्मी ने धीमे स्वर से कहा—"इस बावड़ी का गुप्त मार्ग राज-महल के नीचे तक गया है। और जिस स्थान पर यह पहुँचता है वहाँ से तीस हाथ की दूरी पर दूसरे गुप्त मार्ग से—"

"मुं—"

लक्ष्मी ने होठ पर अंगुली रखकर रसनिधि को चुप कर दिया। फिर जिस प्रकार सब गये थे, उसी प्रकार अन्धकार मे छिपते हुए लौट आये। अपने पूर्व स्थान पर आकर तीनो ने दम लिया।

"यही हमारे महल का शिवालय है। जानते हो, इन महादेव के विषय मे क्या प्रसिद्ध है?"

"नहीं।"

"कहते है कि प्रतिदिन रात्रि को वे नगर के बाहर, भुवनेश्वर महादेव के मन्दिर मे भैरव से मिलने जाया करते है।"

"किस प्रकार?"

"इनका नन्दी बड़ा शक्तिधर है। मन्दिर से लोप हो कर, पाताल-मार्ग से भुवनेश्वर के मन्दिर मे पहुँचता है।"

"यह बात है?"

"हाँ, भगवान को प्रसन्न करना चाहिये।"

आकांक्षा और विश्वास-पूर्ण स्वर मे रसनिधि ने कहा—"माताजी, शिव भगवान अवश्य प्रसन्न होगे।"

"अच्छा, अब भगवान् शंकर की बात समाप्त करो। महाराज आते होगे, मै जाती हूँ।"

कृतज्ञता-पूर्ण स्वर मे रसनिधि ने कहा—"अच्छा माताजी, आज से आप ही हमारी कुलदेवी है।"

"तुम्हारी कुलदेवी?"

जिह्वा को दाँतो-तले दबाते हुए रसनिधि ने कहा—"मैं भूल, अवन्ति-नाथ की।"

"मै अपने स्यून-राज की ही वर्ना रहूँ, तो बहुत है।"

—

चौदहवाँ प्रकरण

काष्ठ-पिञ्जर

आज रात्रि में मृणालवती को निद्रा नहीं आई। वह सदैव निश्चिन्त होकर सोया करती थी; किन्तु आज उसे एक नया अनुभव हो रहा था। उसने सो जाने के लिए बड़ा प्रयत्न किया, परन्तु फल कुछ न निकला। वह ध्यान करने बैठी, परन्तु वह भी नही रुचा। मुञ्ज के पाप-पुण्य का हिसाब लगाने मे ही उसे सच्चा सार प्रतीत हुआ।

समय बीतने लगा, परतु उसे निद्रा नहीं आई। और न मुञ्ज ही उसकी दृष्टि से ओझल हुआ। पापी मुञ्ज को कुचल कर उसके पापो का फल देना चाहिए, अथवा उस पर दया करके पुण्य का मार्ग दिखाना चाहिए? दोनो उपायो मे से वह कोई निश्चय न कर सकी। उसे दुःख पहुँचा कर, कष्ट देकर, उसके पापो का प्रायश्चित्त कराने की इच्छा हुई; कभी उसकी आत्मा का उद्धार करने के लिए उसे निष्कलंक-जीवन का पाठ पढ़ाने का मन हुआ। हृदय ने कोई निर्णय नही किया और प्रातःकाल निकट आ पहुँचा।

उसने निर्णय को अभी स्थगित कर दिया। मुञ्ज को काठ के पिंजड़े में रखने की आज्ञा तो हो ही चुकी थी, अतएव यदि वह उससे सीधा हो जाय, उसे सद्बुद्धि आ जाय, तो निर्णय करना सरल हो जायगा; ऐसा मृणाल ने

विचार किया। मृणाल अपने मन मे मुञ्ज को बड़ा दुर्बुद्धि समझ रही थी और तैलप तथा अपने को अखण्ड प्रतापवान्, नीतिवान् और न्यायी। उसे यह दृढ विश्वास था कि अपनी व्यवहारिक नीति और अपने न्याय से ही तैलप की विजय हुई है।

सूर्योदय होते ही स्नान तथा ध्यान करके वह राज-महल की अटारी पर आ गई; और उसे देखते ही जक्कला तथा लक्ष्मी भी वहाँ जा पहुँची। पापियो को पददलित होते हुए देखने मे ही सत्य की विजय समझी जाती थी; अतएव राज-महल के सब नर-नारी इस प्रसङ्ग पर एकत्र हो गये।

राज-महल के चौक मे भी लोगो का समूह एकत्र था। राज-महल की एक दीवार के पास ही एक बहुत बड़ा काठ का पिंजडा रक्खा हुआ था।

बारी-बारी से कई नरेश, तैलपराज के बाहु-प्राबल्य से विवश होकर, इस पिञ्जरे मे अपने पाप का पश्चात्ताप करने आये।

तिरस्कार-पूर्ण हँसी हँसते हुए प्रजा-जनो के समक्ष सारा दिवस व्यतीत करना, बड़े-बड़े गर्वीलो का भी गर्व गलित कर देने वाला अनुभव था। जो कभी साधारण मनुष्य के संसर्ग मे भी नही आये थे उनके पास सब प्रकार के मनुष्य आते, उनकी हँसी उड़ाते, किसी समय थूक भी देते, कभी ढेले फेकते, और अनेक कटु वचनो से उनकी स्थिति का भान कराते। जो सिंहासन अथवा अम्बारी के अतिरिक्त, छत्र और चॅवर के आडम्बर के बिना कभी बैठते ही न थे, वे विवश

होकर खड़े रहते, थक कर दुःख से पिंजड़े में बैठ जाते, अथवा सो जाते।

यह युक्ति अच्छे-अच्छो का मान भङ्ग कर देती थी; इन्द्र की भी कान्ति फीकी हो जाती थी; कर्ण के-से दानी भी दीन बन कर मृत्यु की याचना करते थे। दुर्दशा के ऐसे अनुभव से प्रत्येक मनुष्य अपनी जिह्वा को काट कर माथा पटक कर मृत्यु की शान्ति प्राप्त करना चाहता था। और ऐसे निष्फल प्रयत्नो से लोग हँसते, बन्दी दुखित होता, और तैलपराज की कीर्त्ति दशो दिशाओ मे छा जाती।

मृणाल की विवेक बुद्धि जड़ नहीं थी; उसे विश्वास था कि इस पिंजड़े मे मुञ्ज का गर्व गलित होने पर ही सत्य की विजय होगी।

दर्शको का समूह बहुत बढ़ गया, और सैनिक बड़ी कठिनता से उनको पिंजड़े से दूर रखने मे समर्थ हुए।

सब टकटकी लगा कर देखने लगे। मृणाल के स्वस्थ हृदय पर अधीरता—केवल अधीरता का ही प्रहार होने लगा; महल के द्वार से चार सैनिक, मुञ्ज के हाथों को पीछे बाँध कर, उसे पिंजड़े में बन्द करने के लिए लाये।

उसके मुख पर वही शान्ति और गौरव था, नेत्रो मे वही तेज और हास्य था और उसके प्रचण्ड शरीर पर वही स्वस्थता थी। उसने बड़े चाव से पिंजड़े मे प्रवेश किया, मानो हाथी पर सवार हो रहा हो, और तनिक हँसकर उसने चारो ओर देखा।

उसके आने पर लोगो ने कुछ हाहा-ठीठी आरम्भ कर-

दी; परन्तु उसका स्वरूप, उसका शरीर, और उसका हास्य देख कर सब लोग शान्त होने लगे। उसे पकड़ कर लाने वाले एक सैनिक से न रहा गया। वह बोला—"क्यो पृथ्वीवल्लभ, प्रसन्न तो हो?"

मुञ्ज ने उसकी ओर मुड़ कर देखा और आनन्द से हँसकर अपना स्तम्भ का-सा पैर उठा कर उसे एक ऐसी लात जमाई कि वह बेचारा ठुकराये हुए पत्थर की तरह लुढ़क कर दूर जा गिरा।

साथ ही मुञ्ज ने उच्च स्वर मे कहा—"हाँ भाई, तुम्हे देख कर विशेप प्रसन्न हुआ।"

लोग खिलखिला कर हसने लगे, तालियाँ पीटने लगे और मार्ग मे निराधार पड़े हुए सैनिक की हँसी उड़ाने लगे। अटारी पर खड़ी हुई स्त्रियाँ भी अपने हास्य को नही रोक सकी। दूसरे सैनिको ने शीघ्र ही पिंजड़े से बाहर निकलकर द्वार बन्द कर दिया।

उस सैनिक को दूसरे सैनिको ने बड़ी कठिनता से खड़ा किया। उसका कराहना सुनकर लोग हँस रहे थे और मुञ्ज भी हँस रहा था।

जब उसे खड़ा किया गया, तो पिंजड़े मे से मुञ्ज ने पूछा—"भाई, तुम तो प्रसन्न हो?"

लोग फिर खिलखिला कर हँस पड़े। मुञ्ज के प्रति द्वेप-भाव भूल गये और उसके इस खिलवाड से प्रसन्न हो गये।

इस खिलवाड़ से हँसता हुआ मुञ्ज चारो ओर आनन्द से देखने लगा। उसने अटारी पर दृष्टि डाल कर मृणालवती

की ओर देखा और मस्तक नवा कर नमस्कार किया। जक्ला तनिक हँसी; किन्तु लक्ष्मी खिलखिला कर हँस पड़ी। केवल मृणाल हाथो को मलते हुए देखती रही। सोचने लगी—इस पापी के हृदय मे तनिक भी खिन्नता नही दिखाई देती। इसका गौरव अखण्ड है, इसकी स्वस्थता निश्चल है। क्या यह मनुष्य धूल चाटता हुआ नहीं दीख पड़ेगा ?

मुञ्ज ने पिंजड़े के आसपास खड़े हुए जन-समूह की ओर देखा। उसने विनोद से हँसते हुए कहा—"तुम लोग यह क्या कर रहे हो ? तुम्हे लज्जा नहीं आती ? तुम्हारा राजा आज अवंति-पति को पकड़ कर ले आया है, और तुम ऐसे सादे वस्त्र पहने हुए मूढ़ो की तरह खड़े हो ? जाओ, ज़रा छैला बन आओ। तैलङ्गण की सुन्दरियाँ कहाँ है ? स्त्रियो के बिना भी कहीं विजय-उत्सव हुआ है ? राग रंग आदि सभी सामग्रियाँ चाहिए।"

निकट खड़े हुए मनुष्य हँस पड़े। मुञ्ज ने एक छोटी-सी बालिका को बुलाया—

"इधर आओ, तुमको गाना आता है ?"

"गाना ?"

"पगली ! यदि अवन्तिका होती, तो तुझ जैसी बालिकाये गाती, बजाती और नाचती। अच्छा, तुझे नाचना आता है ?"

"नही।"

"धत्तेरे की। कुछ बजाना भी आता है ?"

"नही।"

"कैसे मनुष्य हो तुम ? बेचारा तैलप जीतकर आया है, और तुम उसे गा-बजाकर बधाई भी नहीं देते। अच्छा आओ, मै तुम्हे सिखाता हूँ। तुम संस्कृत जानती हो ?"

"जी नही।"

"अच्छा मै सिखाता हूं। देखो, मुझे तुम्हारी तैलङ्गिणी आती है या नही—

"तैलप-नृपति-नगरी सदा, रस-गान-तान-विहीन है।"

नीचे झुककर स्नेह-पूर्ण स्वर मे मुञ्ज ने पूछा—"बता, ठीक है या नही, ?"

बेचारी बालिका लज्जित होकर नीचे देखने लगी। लोग हँसने लगे।

"बोल, बोल, घबराती क्यो है ? देख, मै गाता हूं।"

बालिका ने ऊपर देखा। इतना सुन्दर स्वर, इतना प्रतापी मुख और इतनी श्रद्धा से आकर्षित कर लेने वाली दृष्टि देखकर उसकी घबराहट दूर हो गई; वह मुञ्ज के साथ धीमे स्वर मे गाने लगी—

तैलप-नृपति-नगरी सदा—

मुञ्ज ने कहा—"शावाश ! गाओ, गाओ,—

रस-गान-तान-विहिन है।"

बालिका ने गाया, लोगो ने भी स्वर साधा। मुञ्ज ने स्वर ऊंचा करके दूसरा चरण गाया—

"पद पकड़ पृथ्वीनाथ को, रक्खे हुए वह दीन है।"

मुञ्ज के संस्कारशील, सरस और उच्च स्वर की प्रतिध्वनि शान्त हो गई। लोगो के हृदय मे घबराहट का संचार

हो आया और उनके भय-पूर्ण नेत्र अटारी में बैठी हुई मृणाल-वती की ओर घूम गये।

मुञ्ज ने विनोद के साथ पूछा—"क्यो, मृणालवती से डर रहे हो? डरने की कोई आवश्यकता नही। उन्होंने भी यह बात स्वीकार की है।"

यह बात मुञ्ज ने इस प्रकार कही कि मृणाल सुन ले। मुञ्ज का मधुर और हास्य-पूर्ण स्वर सर्वत्र फैल गया। मृणाल के क्रोध का पार नहीं रहा। उसके नेत्रो मे विजली-सी चमक उठी। वह अस्वस्थ-सी हो गई। अपनी अस्वस्थता को छिपाने के लिए वह तुरन्त ही वहाँ से चली गई।

अटारी मे अशान्ति-सी छा गई। जक्कलादेवी भी वहाँ से चली गईं और दासियाँ भी। केवल लक्ष्मीदेवी प्रफुल्ल-वदन बैठी देखती रहीं।

मुञ्ज उस वालिका की ओर घूमा। "हाँ बेटी, पूरा तो करो—

'तैलप-नृपति-नगरी सदा रस-गान-तान-विहीन है।
पद पकड़ पृथ्वीनाथ को रक्खे हुए वह दीन है।'

बोलो, बोलो, गाओ।"

कई मनुष्यो ने डरते-डरते गाया।

इतने मे राज-महल से पच्चीस-तीस अस्त्रधारी सैनिक आये, और लोगो को छिन्न-भिन्न करने के लिए उन पर टूट पड़े।

लोग अपने प्राण लेकर भाग गये। मुञ्ज पिंजड़े के अन्दर खड़ा खड़ा हँसता रहा। सामने अटारी पर लक्ष्मी ने उस हास्य का प्रतिविम्ब डाला।

पन्द्रहवाँ प्रकरण

माधव का संयम

दूसरे दिन प्रातःकाल रसनिधि स्नान-संध्या करके विल्व-पत्र चढ़ाने के लिए लक्ष्मीदेवी के बताये हुए शिव-मन्दिर मे गया।

शिवालय मे विलास को ध्यान करते देख रसनिधि थोड़ी देर के लिए खड़ा रह गया। वह कोमल लावण्यवती बालिका पद्मासन लगाये हुए थी और अ-रसिक वृद्धो को शोभा देने वाले उस आसन को मोहक बना रही थी। उसके नेत्रो की छटा को, उसके अंग की अस्पष्ट किन्तु अपूर्व रेखाओ को, वह कवि की दृष्टि से देखने लगा। और देखते-देखते उसका हृदय उस वैराग्य की ज्वलन्त ज्वाला से मुरझाने वाली वल्लरी को रससिंचन द्वारा हरा करने के लिए व्याकुल हो उठा।

उसने दृष्टिपात कर नन्दी को देखा। निकट जाकर शंकर पर विल्व-पत्र चढ़ाया और द्वार के आगे जाकर विलास के ध्यान-मुक्त होने की प्रतीक्षा करने लगा।

इसी समय किसी के आने का पद-रव सुनाई पड़ा। रसनिधि ने घूम कर सत्याश्रय को आते देखा। वह सीढ़ियो पर पैर रखता हुआ नीचे उतरने लगा, जैसे विल्व-पत्र चढ़ा कर लौट रहा हो।

सत्याश्रय ने कठोरता से भवें तान कर पूछा—"कौन है ?"

"मै अवन्ति-नाथ का कवि हूॅ ।"

"जिन्हे महासामन्त छुड़वाकर ले आये हैं ?"

इस तिरस्कार-पूर्ण प्रश्न से रसनिधि भी स्थिर दृष्टि से देखता रहा । उसने कहा—"हॉ ।"

"यहॉ क्यो आये हो ?"

रसनिधि ने उद्धत स्वर में कहा—"शंकर-दर्शनार्थ ।"

"तुम्हारे लिये नगर मे अनेक शिवालय है । इसमे आने की किसी को आज्ञा नही है ।"

"शिव-मन्दिर सर्वदा, सब के लिए होता है । हमारे यहॉ तो यही नियम है; यहॉ का मुझे ज्ञात नही ।"

सत्ता-पूर्ण दृष्टि से सत्याश्रय ने देखा और ऐसे साधारण मनुष्य से वाद-विवाद न करके उसने केवल यही कहा—"अच्छा, अब तो ज्ञात हो गया ?"

रसनिधि के उत्तर देने से पूर्व ही सत्याश्रय वहॉ से चला गया । कवि होठ चबाते हुए क्षण भर देखता रहा । उसके हृदय मे सरस्वती के भक्त को शोभा न देने वाला क्रोध उत्पन्न हो गया था ।

वह मन्दिर के पीछे जाकर खड़ा हो गया । थोड़ी देर मे जब सत्याश्रय मन्दिर से निकल कर राज-महल मे चला गया, तब रसनिधि फिर मन्दिर मे आ गया । विलास महादेव की पूजा कर रही थी ।

रसनिधि ने पूछा—"क्यो विलासवती, क्या कर रही हो ?"

"ध्यान कर रही थी, अभी निवृत्त हुई हूँ।"

"ऐसे रमणीक प्रभात मे तुम्हे यहाँ पर बन्दी होकर रहना भला मालूम होता है ?"

"बन्दी होना कैसा ? मुझे तो यह बात नही मालूम होती। ध्यान किये बिना चित्त-वृत्ति का निरोध कैसे होगा ?"

"मै नहीं समझता कि चित्त-वृत्ति का निरोध क्यो करना चाहिये।"

"यही देखिए, उदयामती के बिना आपको कितना दुःख सहना पड़ता है ? यदि चित्त-वृत्ति का निरोध किया जाय, तो इसे सहन न करना पडे।"

रसनिधि हँस पड़ा। बोला—"ज्ञात होता है, उदयामती तुम्हारे हृदय पर अंकित हो गई है।"

"हाँ, रात भर उसके और उस नाटक के ही स्वप्न मुझे आते रहे।"

"यही तुम्हारा निरोध है ?"

विलास ने हँसते हुए स्वीकार किया—"मुझमे कुछ विकार आगया है, यह सत्य है। परन्तु मै तो अभी कच्ची हूँ।"

"शिव भगवान् न करे कि तुम पक्की हो जाओ।"

विलासवती ने मौन-मुख शंकर पर पुष्प चढ़ाये और प्रणाम कर के वह खड़ी हो गई।

"अब कहाँ जाओगी ?"

"तनिक मृणाल बहन को प्रणाम कर आऊँ।"

"पृथ्वीवल्लभ पिंजड़े मे बन्द किया जाने वाला है। वे यही देखने गई है।"

"तब क्या करूँ ? आप अपना वह नाटक ही सुनाइये। कही जाना तो नहीं है ?"

रसनिधि बोला— "नहीं। नाटक सुनकर क्या करोगी ? उसमें शुष्क वैराग्य नहीं है, संयम नहीं है, और चित्त-वृत्ति का निरोध भी नही है। उसमे तो दो निर्दोष, पवित्र हृदय प्रेमी बालकों की कथा है। वे एक-दूसरे को प्राणो से भी अधिक प्यार करते और एक-दूसरे को देखने मे ही मुक्ति की सिद्धि मानते थे। उनके हृदय मे त्याग का अंधकार नहीं था; उनकी चित्त-वृत्तियो पर उपवास का अंकुश नही था। तुम उनकी कथा सुनकर क्या करोगी ?"

"माताजी ने भी उसे सुना है, तो मै क्यो न सुनूँ ?"

रसनिधि ने रसभरी दृष्टि से विलास की ओर देखकर कहा—"तो सुनो। विदर्भराज के अमात्य देवरात का पुत्र माधव अध्ययन करने के लिए पद्मावती आया। वहाँ अचानक मदनोद्यान मे अमात्य भूरिवसु की कन्या मालती को देखकर वह प्रेमोन्सत्त हो गया।

"प्रेमोन्मत्त ?"

"हाँ। तुम्हारी भाषा मे कहा जाय, तो उसने एक प्रकार के संयम का अनुभव किया।"

"वह किस प्रकार ?"

"उसने मालती पर चित्त लगा कर धारणा की; उसके लिये एकान्त ध्यान किया; और उसे देख कर वह अपना

स्वरूप भूल गया—यही समाधि है—त्रयमेकत्र संयमः ।"†

विलास की हँसी का पार न रहा।—"क्या कहना है उसके संयम का !"

"तुमको जिसका अनुभव करने मे वर्षों लग जायेंगे उसका उसने क्षणभर में अनुभव कर लिया।"

"फिर ?"

"फिर क्या, मालती के बिना वह बेचारा अधीर हो उठा। उसने अपने मित्र से अपना दुःख कहा—"

"क्या कहा ?"

"-'उसे देख कर मेरा यह हृदय विस्मय विमुग्ध हो गया, भावशून्य बन गया, और आनन्द से उत्फुल्ल हो गया; जैसे अमृत-निर्झर मे स्नान कर लिया हो। पर उसके जाते ही वह एक अकल्पित अग्नि से जलने लगा। विवेक-हीन हो गया।'-"*

"बुरा हुआ बेचारे का !"

"इतना ही नहीं, विवेक के विनाश से, वृद्धिगत मोह के विकार ने उसे ऐसा सन्तप्त किया कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। बेचारा भ्रमित हो गया। नेत्रो मे अश्रु भर कर अपने मित्र मकरन्द से कहने लगा—'मित्र मकरन्द, मुझे सामने पड़ी हुई वस्तु भी नही दिखाई देती। सरोवर के शीतल जल और चन्द्रिका से भी मेरे ताप का शमन नही होता। भाई, किसी बात में मन नही लगता—चित्त अशान्त रहता है, न जाने क्या-क्या देखता है' ।"*

† पातञ्जलि योग-दर्शन । * मालती-माधव ।

'रसनिधि केवल कथा ही नहीं कह रहा था; वह भावों का भी अनुभव करता जा रहा था। विलास, शिवालय और मान्यखेट को वह भूल गया; उसकी आँखों में एक नया ही तेज छा गया। धीमे स्वर में, भवभूति के शब्दों में अपने हृदय के उद्गार प्रकट करने लगा—

"संसार में चन्द्रकला है—और भी अनेक विजयिनी वस्तुएँ हैं जो प्रकृति से मधुर बन कर हृदय को आनन्द देती है। परन्तु जब मेरी विलोचन-चन्द्रिका मेरी दृष्टि में आई, तभी मेरे जीवन का महोत्सव हुआ। ऐसा महोत्सव करने वाली को कौन भूल सकता है? माधव का क्या अपराध था? वह तो मालती को यहाँ-वहाँ, आगे-पीछे और बाहर-भीतर, दसों दिशाओं में देखने लगा।"*

रसनिधि मौन हो गया। उसने दीर्घ श्वास लिया। बोलते-बोलते उसका हृदय विगलित हो गया था। निःश्वास छोड़ कर उसने कहा—"जिसने इसका अनुभव ही नहीं किया हो, वह प्रेम-समाधि को क्या समझेगा?"

विलास तो इन शब्दों से और इस भाव से दिग्मूढ़ होकर देखती रह गई। उसके नेत्रों में अश्रु भर आये।

रसनिधि ने भी अपनी धोती के छोर से आँखें पोछ कर कहा—"विलासवती, यह इस नाटक का पहला अङ्क है।"

"कविराज, आपके नेत्रों मे भी अश्रु आ गये?"

"क्यों न आयें? मै भी तो माधव की स्थिति को

* मालती-माधव।

भोग रहा हूँ । कहाँ मै, और कहाँ मेरी उदयामती ?"

क्षण भर तक दोनो मौन धारण किये खड़े रहे ।

विलास ने आश्वासन देते हुए धीर और स्नेह-सिक्त स्वर में कहा—"नाटक का शेषांश अब फिर सुनाइयेगा ।"

"जैसी इच्छा ।" कहकर रसनिधि ने पुनः निःश्वास लिया ।

स्नेह-पूर्ण हृदय और अश्रुसिक्त नयनों से विलास देखने लगी ।

कुछ क्षण मौन रह कर रसनिधि बोला—"तो चलना चाहिये । मुझे आज्ञा ?"

"अच्छा ।" कहकर मौन धारण किये हुए दोनो अपने अपने स्थान की ओर चल दिये ।

सोलहवाँ प्रकरण

पुनः एक प्रयत्न

मृणालवती का क्रोध संयम की मर्यादा लाँघ कर आगे बढ़ गया। जप, तप, ध्यान अथवा पारायण से भी वह न रुक सका। पृथ्वीवल्लभ का विजयी हास्य उसके नेत्रों के आगे नृत्य करने लगा—सब पर सत्ता जमाने लगा। शान्त, समतल और शुष्क मरु-स्थल पर फिर समुद्र की तरंगे लहराने लगी।

वह अधमता का स्वाद चखाने गई थी; पर स्वयं ही चख कर लौटी। मन मे शङ्का हुई—विजेता कौन है? मै या पृथ्वीवल्लभ? वह मुञ्ज के विषय मे इस उपनाम से कभी बातचीत नही करती थी; परन्तु किसी अज्ञात कारण से उसे भास होने लगा कि यह नाम मुञ्ज ही का है। यह भास होते ही उसकी आकुलता बढ़ने लगी।

हृदय में एक अस्पष्ट विचार उत्पन्न हुआ कि यह पुरुष कैसा अद्भुत और अप्रतिम है। बुद्धि की सहायता से उसने इस विचार को दबा दिया। भ्रम देख कर, उसे दूर करने का प्रयत्न करने लगी। उसमे क्या विशेषता है? वह केवल मनुष्य ही जैसा मनुष्य तो है। हजार बार उसने इस विचार को दुहराया, परन्तु हृदय में अलक्ष्यवाणी से इस प्रश्न की प्रतिध्वनि हुई—'क्या वह मनुष्य ही जैसा है? साधारण मनुष्य है?'

मध्याह्न हुआ। भगवान् भुवनभास्कर के प्रताप से भीत होकर नगर-निवासी अपने-अपने घरो मे घुस बैठे। मार्ग शून्य हो गये। नगर मे निर्जनता जैसी शान्ति छा गई। अपने एकान्त गृह की निर्जनता मे भी विचित्र विचारो द्वारा उत्पन्न घनी बस्ती मे वह आकुल और दुखित होकर बैठी थी।

उसका प्रभावशाली मस्तिष्क इस नई व्याकुलता का नाश करने के लिए और मुञ्ज को अपने दृढ़ स्वभाव से डिगाने के लिए नये-नये प्रयोगो का आविष्कार करने लगा। आविष्कार तो अनेक किये; परन्तु उपाय कोई न मिला।

उसने खिड़की खोली। मार्ग निर्जन था। गरम हवा चल रही थी। उसकी कष्ट-सहिष्णुता और निर्द्वन्द्वता के सामने इस ताप की कोई बिसात नही थी। फिर भी उसके हृदय मे एक अस्पष्ट अग्नि जलने लगी। जैसे वन मे दावानल प्रज्वलित होने के पूर्व पत्तो से धुआँ उठने लगता है। इस प्रकार इस अग्नि ने उसके हृदय को झुलसाना आरम्भ कर दिया था।

थोड़ी दूर एक अटारी पर एक स्त्री अपने वस्त्र सुखा रही थी। ग्रीष्म के प्रताप से निर्जन बना हुआ नगर स्मशान के समान शान्त था। उस शान्ति मे वह स्त्री गा रही थी, सुनाई पड़ा—

"तैलप नृपति नगरी सदा.........."

मृणाल के नेत्रो से अग्नि-स्फुलिङ्ग निकलने लगे। वह क्रोध की भयंकर ज्वाला को शान्त करते हुए काँप उठी। इच्छा हुई कि एक धनुर्धारी सैनिक को बुला कर उस स्त्री को

विँधवा दिया जाय; परन्तु कुछ विचार कर इस मूर्खतापूर्ण इच्छा का उसने दमन किया। इन सब अशान्तियों का कारण केवल मुञ्ज था। इस निरपराध प्रजा से क्यो उसका बदला लिया जाय ?

वह क्रोध को रोककर फिर विचार करने लगी—"किस प्रकार मुञ्ज का गर्व गलित किया जाय ? काष्ठ-पिञ्जर तो मुञ्ज को महत्ता स्थापित करनेवाला सिंहासन बन गया है। तैलङ्गण की प्रजा उसके शब्द सुनकर अपने कर्त्तव्य का भी उल्लंघन कर रही है। अब क्या उपाय हो ?"

वह दूसरी अटारी पर गई। वहाँ से पींजड़ा दृष्टि पड़ रहा था। उसकी आज्ञा से सैनिक-गण पिंजड़े को चारो ओर से घेरे हुए पहरा दे रहे थे।

इस ताप मे—इस स्थिति में भी मुञ्ज ज्यो-का-त्यो खड़ा था। वह दो तीन सैनिको से वार्त्तालाप कर रहा था। उसका मुख सहास्य था, उसके नेत्र उत्फुल्ल थे, उसका गौरव अभङ्ग था, उसका अनत शरीर प्रभावदर्शी तेज का प्रसार कर रहा था।

अटारी की खिड़की खुलते ही मुञ्ज ने ऊपर की ओर देखा और प्रतापी, सुन्दर और अपूर्व मुख-धनुष्य से एक भयंकर हास्य-बाण मृणाल की ओर छोड़ा। क्रोध से पृथ्वी पर पैर पटक कर वह अटारी से लौट आई और जोर से द्वार बन्द कर लिया।

विकराल स्वर से उसने पूछा—"कोई है ?"

एक दासी, आई—"आज्ञा ?"

"नायक रणमल्ल है ?"

"देखे आती हूँ ।"

क्षण भर मृणाल इधर-उधर पद-चारण करती रही। नायक आ पहुँचा । कठोरता से उसने कहा— "रणमल्ल !"

उस कठोर स्वर से काँपता हुआ वह हाथ जोड़ कर बोला—"आज्ञा ?"

"इस प्रकार तुम्हारे सैनिक पहरा देते हैं ?"

"किस प्रकार ?—"

मृणाल ने जाकर अटारी का द्वार खोला और रणमल्ल को वह काष्ठ-पिञ्जर दिखाया—"यह पहरा दे रहा है या खेल कर रहा है ? प्रत्येक सैनिक से कह दो, कि यदि किसी ने भी मुञ्ज से वार्त्तालाप किया, तो उसका वध कर दिया जायगा ।"

"जो आज्ञा ।" कहकर नायक वापिस लौटा ।

ज्यों-ज्यों सन्ध्या होने लगी, त्यों-त्यों मृणाल के हृदय में भी शान्ति स्थापित होने लगी और यह क्रोध उसे निरर्थक जान पड़ा । मुञ्ज पापी था; वह अधिक दया का पात्र ज्ञात हुआ । ऐसे मनुष्य पर क्रोध करना उसे भ्रम मालूम होने लगा । अधम पर क्रोध करना, उसे त्याज्य रीति से तड़पाना, मृणाल को अपने नियम के विरुद्ध प्रतीत हुआ । मुञ्ज बिलकुल बुरा तो नहीं है । प्रत्येक मनुष्य के हृदय मे किसी सद्गुण का स्तंभ होता ही है और उसके आधार पर यदि पुनः रचना की जाय, तो अवश्य ही वह हृदय निष्कलंक बन जाय । उसे अपनी भूल पर पश्चात्ताप हुआ । यदि उसने मुञ्ज को अधिक

बातें करने दी होतीं, तो अवश्य ही उसके स्वभाव में छिपे हुए सद्गुण का स्तम्भ हाथ लग जाता। इस विचार-माला के मनको को गिनते हुए, उसे अपनी अपूर्णता का भान हुआ और पूर्णता प्राप्त करने का जो विश्वास था, वह नष्ट होने लगा।

सन्ध्या समय तैलप आया।

"बहिन, आज तुम्हारे दर्शन नहीं हुए ?"

मृणाल असमंजस मे पड़ गई। जीवन में यह पहला अवसर था कि उसे उत्तर नहीं सूझा।

"तुम्हारी कीर्त्ति का विचार कर रही थी।"

"अब कौन-सा विचार शेष रहा है ?"

"मुञ्ज का गर्व अभी गलित नही हुआ, अतएव सब कुछ शेष है।"

तैलप के छोटे-छोटे नेत्रो मे रक्तिमा आगई। वह बोला—"हाँ, मैने सुना है कि वह काष्ठ-पिंजर मे भी अपनी निर्लज्जता को नहीं त्यागता।"

"हाँ, मै भी उसका गर्व गलित करने का उपाय सोच रही हूँ।"

"अब सोचने की आवश्यकता नहीं। कल राज-सभा मे उसे बुलाया जायगा, मै भली भांति उसका गर्व गलित कर दूँगा।"

"ठीक है। घबराओ मत। मै उससे उसके दुष्कर्म का पूरा-पूरा पश्चात्ताप कराऊँगी।"

तैलप ने कहा—"तुम्हारे प्रभाव पर मुझे श्रद्धा है। और कल राज-सभा में उससे पाद-प्रक्षालन कराऊँगा, तो वह सीधा

हो जायगा।"

"भाई, सावधानी से काम लेना। वह अन्य राजाओं की तरह नहीं है। उसे सीधा करना बड़ा कठिन कार्य है।"

"बहिन, तुम्हारा आशीर्वाद और तुम्हारी सम्मति चाहिए, फिर किसकी शक्ति है कि सामने खड़ा हो?"

"मैं अभी उससे मिलने जा रही हूँ।"

"क्यों?"

"उसे उसके कलंकित-जीवन का अच्छी तरह भान कराना है। मेरी कीर्ति पर उसने कितनी धूल झोंकी है, मुझ पर कैसे-कैसे काव्य और नाटक रचे तथा रचवाये हैं, इन सबका हिसाब चुकाना है।"

"तो उसका वध अभी नहीं कराया जायगा?"

"नहीं भाई, इससे तो हमारी विजय अल्पकालीन होजायगी। ज्यों-ज्यों वह तड़पेगा, ज्यों-ज्यों उसका मान भंग होगा, त्यों-त्यों हमारी कीर्ति बढ़ेगी। ऐसे शत्रु को पराजित करना चक्रवर्तियों के भाग्य में भी नहीं लिखा होता।"

"सत्य है। तो आज तुम उससे मिलो, कल राज-सभा है। फिर देखते हैं, वह क्या करता है? काष्ठ-पिञ्जर के निकट तुमने सैनिकों को भेज दिया?"

"भेज दिया। तुमने नहीं देखा? प्रजा-जनों के सम्मुख वह तुम्हारी हँसी उड़ा रहा था।"

"हाँ, देवी ने मुझसे कहा था। मेरी इच्छा तो उसकी जिह्वा निकाल लेने की थी; पर तुम्हारी असम्मति के कारण मैंने वह विचार त्याग दिया। अच्छा, कोई नवीन समाचार

हो, तो रात्रि को कहला भेजिएगा।"

"अवश्य।"

तैलप ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया और मृणाल ने आशीर्वाद दिया।

× × ×

मृणाल के हृदय में एक शूल-सा उत्पन्न हुआ; जैसे किसी विषैले विच्छू ने डंक मार दिया हो। वह सोचने लगी—क्या उसका हृदय कलंकित हो गया? उसने तैलप से हृदय खोल कर वार्त्तालाप क्यों नहीं किया? किसलिए उसने अपने तर्क-वितर्कों को दबा कर उससे मिथ्या बातें कीं?

परन्तु इस विचार से अपने और अपने भाई के प्रति जो अटल श्रद्धा दूर हो चली थी वह पुनः दृढ़ हो गई। मुञ्ज के असत्य आडम्बर से वह भ्रमित हो गई थी; निरवलम्ब बन्दी की निर्लज्ज बातों से वह पराजित हो चुकी थी। वह सोचने लगी—"वह कितनी मूर्ख है कि इस प्रकार भ्रमित हो गई, पराजित हो गई। उसके निष्कलंक हृदय को यह शोभा देता है?" विचार दूसरी दिशा मे प्रवाहित हो चले। हृदय मे साहस आया। और दूर होती हुई स्वस्थता को सुदृढ़ करके वह मुञ्ज से मिलने के लिए तैयार हुई।

उस मनुष्य के प्रत्येक विचारो से परिचित होना, उसके कर्त्तव्य-हेतु का प्रथक्करण करना, उसके जीवन-जाल की गुत्थियो को सुलझाना उस जैसी प्रतापवान् योगिनी अथवा राजनीतिज्ञा के अतिरिक्त और किसका काम था? इस कार्य्य से पीछे हटने में उसे कायरता प्रतीत हुई। तैलप तो अपने

बल के प्रताप से पाद-प्रक्षालन करावेगा । परन्तु वह निष्कलंक जीवन की प्रबल सत्ता के द्वारा ही, उस अधम अवन्तिका-पति के पश्चात्ताप के जल से, अपने पैर धुलवायेगी ।

उसने रणमल्ल को बुलाकर आज्ञा दी कि मुञ्ज को काष्ठ-पिञ्जर से निकाल कर गुप्त बन्दीगृह मे ले जाय । यह कार्य्य करके जब नायक लौटा तब वह उसे साथ लेकर मुञ्ज से मिलने गई ।

——

सत्रहवाँ प्रकरण

कौन किसे सिखाए

कठोरता से संकुचित भँवे तथा संयम से नयमित और धीर गति, मृणाल के हृदय के भावो का परिचय दे रही थीं; तो भी हृदय पहले-सा स्वस्थ नही था, श्रद्धा पहले सी दृढ़ नहीं थी।

पीछे आती हुई राज्य-विधात्री की भयंकर मुख-मुद्रा देख कर मशालची काँपने लगा; गुप्त बन्दीगृह का रक्षक, ऐसे विचित्र समय मे मृणाल को देखकर और अ-कल्पित संयोगो का दर्शन कर के भय-त्रस्त हो गया।

बन्दीगृह के द्वार खुले; और मृणाल की आज्ञानुसार मशालची मशाल को भीतर रख कर बाहर आ खड़ा हुआ।

मृणाल अन्दर जाकर बन्दीगृह के अन्धकार के साथ परिचित होने का प्रयत्न करने लगी।

अवन्ति-पति मस्तक पर हाथ धरे एक कोने मे पड़ा था। उसने धीरे से ऊपर देखा और मीठे स्वर में कहा—"आओ, मै तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था।"

वाक्य ऐसा साधारण था, स्वर ऐसा माया-पूर्ण था कि उसके हृदय पर सजे हुए कवच के बन्धन टूटने लगे।

"मेरी ?"

पृथ्वीवल्लभ लेटे हुए बोला—"हाँ, तुम्हारी। मुझे तो

विश्वास था कि तुम आए बिना न रहोगी। कहो, स्वस्थ तो हो? प्रसन्न तो हो ?"

उसके स्वर से मोहक वातावरण का प्रसार हो गया। मशाल के प्रकाश मे भी उसके नेत्र हास्य-युक्त प्रतीत होने लगे।

मृणाल ने दृढ़ता से अपना हाथ पीछे की ओर किया और क्षोभ को दबा कर कहा—"मुञ्ज, मुञ्ज! तुझमे समझने की बुद्धि नहीं है, या समझी हुई बात को कहने की पवित्रता नहीं है। मै अपने कार्य्य के लिए नहीं आई हूँ; तेरी आत्मा का उद्धार करने आई हूँ। पाप-पंक मे फँसी हुई तेरी अपवित्र आत्मा को शुद्धि के पवित्र पथ पर लगाने आई हूँ।"

शान्त भाव से मुञ्ज बोला—"मृणालवती, दूसरो के भले के लिए परमार्थ करने का कोई मूल्य नही है।"

मृणाल ने निराशा से कपाल पर हाथ रक्खा। कहा—"अपने भले के लिए भी कही परमार्थ होता है ?"

मुञ्ज ने उठ कर बैठते हुए धीमे स्वर मे कहा—"दूसरो की क्या कहूँ ? मैने भी परमार्थ किया है। मैने भी ग़रीबो को उबारा है, उनके दुःख दूर किये है; पर उनके भले के लिए नही, अपने स्वार्थ के लिए। इस परमार्थ के करने में मेरा हृदय तृप्त होता था, इसलिये। मेरे अहम्भाव को सन्तोष प्राप्त होता था इसलिए। और, मेरा हृदय प्रसन्न होता था, इसलिए। दूसरे का भला करने का आडम्बर करना भी अहंकार को संतुष्ट करने का एक मार्ग है।"

मृणाल मौन हो गई। सोचने लगी—"वह मुञ्ज का उपकार करने के लिए आई है, या अपने अहंकार को संतुष्ट करने के लिए ?" उसे मुञ्ज के शब्दो मे किसी अज्ञात सत्यता का भास होने लगा। तो भी उसने साहस के साथ उत्तर दिया—"यह भी तेरी निर्लज्जता का एक लक्षण है।"

मुञ्ज हँसकर बोला—"होगा। बताओ, किस मार्ग पर मुझे ले जाने के लिए आई हो ?"

"निष्कलङ्क जीवन के—"

तुरन्त ही मुञ्ज ने अपना मस्तक उठा कर कहा—"निष्कलङ्क ! मृणालवती, जो अपने कलङ्क को जानते है, उन्ही को निष्कलङ्क होने की आवश्यकता रहती है। तुम मुझे क्या सिखा रही हो ? तुम, राजा की पुत्री, सुरक्षित प्रासाद मे पली हुई, अपने को पूर्ण सत्तावान समझ बैठने वाली, वैराग्य के अभिमान मे मत्त, मुझे सिखाओगी ?" बड़े ममता पूर्ण शब्दो से इतना कह कर मुञ्ज हँस पड़ा।

"यदि बुद्धि हो, तो प्रत्येक मनुष्य सीख सकता है।"

मुञ्ज फिर हँस पड़ा। "मुझ मे बुद्धि है, तो भी तुम नही सिखा सकती। वह सीख सकता है, जो दुखी हो, अपरिपक्व हो। मुझे दुःख स्पर्श तक नही करता, अपरिपक्वता का मुझे अनुभव तक नही होता; फिर तुम मुझे किस प्रकार सिखाओगी ? और मुझे सीखना ही क्या शेष रहा है ?"

"कितना अभिमान है !"

"तुम चाहे अभिमान समझो। परन्तु तुम मेरी कथा कहाँ जानती हो ? मै किसी अनाथ का त्यागा हुआ पुत्र था;

और आज पृथ्वीवल्लभ हूँ। सिंहनियो ने मुझे दूध पिलाया, और गजराजो ने मुझ पर व्यजन किया है। मैने भिक्षा मांगी है, और सिंहासनो का दान किया है। मैने दुःखियो के लिए अपना शरीर दे दिया और सुखी लोगो के शरीर के टुकड़े टुकड़े कर दिये है। मैने रमणियो का रस-भण्डार लूटा; और लक्ष्मी के समान ललिताओ का शिरच्छेद किया है। श्रुति-वाक्यो का पाठ करके देव-दुर्लभ तपश्चर्य्या की; और शृङ्गार सूत्रो का अध्ययन करके, वीभत्स-रस का भी साक्षात्कार किया है। अब बाकी क्या रहा ?" इतना कहकर उसने मस्तक को पीछे की ओर झुका लिया और उत्तर की प्रतीक्षा करते हुए, वह मौन हो गया।

इन वाक्यो का उच्चारण करते समय, दन्तावलि की विद्युत् आभा से दीप्त उसका मुख, वर्षाऋतु की सन्ध्या के समान हृदय-भेदक बन गया, नेत्रो से प्रस्फुटित मीठी धाराओ ने चारो ओर रस का प्रसार कर दिया। कुछसमय तक वह देखता रहा, और स्नेह के आवेश से बोला—"मृणालवती, इन सब बातो का अनुभव करके भी मै सुखी हूँ, मैंने अपने हृदय मे कोई कलङ्क नहीं देखा। तुम मुझे क्या सिखाओगी ?"

मृणाल से कोई उत्तर देते न बना। उसका गला रूँध गया आर हृदय की विचार-गति बन्द हो गई।

"सीखना तो तुम्हे है—जीवन का आनन्द अभी तुमने नहीं लूटा; पुष्प की शय्या मे समाया हुआ रहस्य तुमने नही समझा। रस-रंग मे मत्त होकर नृत्य करना तुमने नहीं

सीखा। यह सब अभी तुम्हारे लिए शेष है।"

मृणाल ने क्रोध से हाथ को ऊपर उठा लिया। मुञ्ज इसकी परवा न करके आगे कहने लगा—

"और किसी रसिक की रजाई में—"

मृणाल दाँत पीस कर बोली— "पापी—"

मुञ्ज हँस पड़ा। वह खड़ा होकर मृणाल के निकट आया और बोला—"रस-सागर का मन्थन करने से क्या प्राप्त होता है, यह सीखना है।"

दाँत किटकिटा कर मृणाल ने कहा—"चाण्डाल, निर्लज्ज, लम्पट, अब कल प्रातःकाल तू देखना।" उसके नेत्र लाल हो गये। मस्तक पर रक्त-वाहिनी-शिराएँ उभड़ आईं।

मुञ्ज फिर हँसते हुए बोला—"अच्छा। और कल सायङ्काल तुम भी ध्यान रखना, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।"

मृणाल के मुख में फेन आ गया। "मेरी प्रतीक्षा?"

"हाँ, तुम्हें सब कुछ सिखाना है न—"

"दुष्ट, तेरी जिह्वा—"

मुञ्ज ने शान्ति से कहा—"मेरी जिह्वा से तो तुम जैसी अनेक मानिनी वश हुई है। पृथ्वीवल्लभ के हृदय से हृदय मिलाये बिना तुम्हारा निस्तार नहीं है।"

मृणाल क्रोधाग्नि से जल उठी। उसने समक्ष खड़े हुए मुञ्ज को ज़ोर से तमाचा मारा। मुञ्ज खिलखिला कर हँस पड़ा और अपने हाथ से मृणाल का हाथ पकड़ कर उसे होठों से लगा लिया।

मृणाल चीख पड़ी; जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो।

उसके नेत्र फट गये, अंग-अंग काँप उठा ।

सामने नयनों से अमृत-वर्षण करते हुए पृथ्वीवल्लभ मधुर हास्य करता रहा ।

"कोई है ?"

रणमल्ल आया । "आज्ञा ?"

"इस पापी के हाथ क्यों नहीं बाँधे ?"

मुञ्ज ने शान्त भाव से कहा—"हाँ, रणमल्ल, अपनी शृंखला लाओ, जिससे हृदय की शृंखला तो खुले; नहीं तो उसका प्रभाव दुःसह हो जायगा ।"

क्रोध से भरी हुई मृणाल सिंहनी की भांति क्रूर-दृष्टि से देखती रही । रणमल्ल और अन्य सैनिकों ने मुञ्ज के हाथों में शृंखला पहना दी

"रणमल्ल, इस पापी ने मेरे हाथ का स्पर्श किया है । इसके हाथ को दाग दो ।"

नायक ने विस्मय से पूछा—"इसी समय ?"

मृणाल ने प्रश्न की धृष्टता से गरज कर कहा—"क्या ?"

रणमल्ल थर-थर काँपने लगा । उसने एक भाला लेकर उसे मशाल से गरम किया ।

अधीरता से पृथ्वी पर पैर ठोक कर मृणाल ने कहा—"चलो । इतना विलम्ब ?"

"यह आया ।" कहकर रणमल्ल ने सैनिकों की ओर संकेत कर के कहा—"अरे पकड़ो उसका हाथ ।"

मुञ्ज ने मधुर स्वर में कहा—"मृणालवती, किसलिए परिश्रम करती हो ? तुम्हारे स्पर्श से ही बेचारे अङ्ग जल रहे

हैं; इनको जलाने के लिए बाहरी अग्नि की आवश्यकता नहीं है।"

उत्तर में मृणाल ने रणमल्ल से कहा—"चलो।"

सैनिक मुञ्ज के शृंखलाबद्ध हाथों को पकड़ने गये; परन्तु बहुत देर तक वह बँधे हुए हाथों से सैनिकों को थकाता रहा।

होंठ चबा कर मृणाल बोली—"कायरो, नपुंसको, यदि तुम इसे नहीं दागोगे, तो इसी क्षण तुम्हारा वध कराऊंगी।"

निराशा के साहस से सैनिक मुञ्ज के हाथों पर टूट पड़े और बड़े परिश्रम से दाहिना हाथ पकड़ कर स्थिर रख सके। परिश्रम से सैनिकों के थक जाने पर भी मुञ्ज आनन्द से खड़ा-खड़ा हँस रहा था।

रणमल्ल ने गरम किया हुआ भाला दाग दिया। मुञ्ज कुछ नहीं बोला। भाले से दागते ही नर-मांस जलने की दुर्गन्ध सारे बन्दीगृह में फैल गई।

मुञ्ज ने हाथ के दागे जाने की तनिक भी परवा नहीं की; वह नयन-बाण से मृणाल को लक्ष्य करके, ज्यों-का-त्यों स्वस्थ खड़ा रहा; जैसे वह हाथ ही उसका न हो।

दुर्गन्ध निकलती देखकर मृणाल ने कहा—"बस करो।"

मुञ्ज ने ज्यों-के-त्यों शान्त; किन्तु तनिक तिरस्कार-पूर्ण स्वर में कहा—"अरे, बस यही। यदि मैं यह जानता कि तुम इतने से ही प्रसन्न हो जाओगी, तो खड़े-खड़े मैं स्वयं ही अपना हाथ जला डालता।"

मृणाल को कोई उत्तर न सूझ पड़ा; वह लौट पड़ी।

"मृणालवती, इस घाव पर औषधि लगाने के लिए कल अवश्य आना।"

आवेश के कारण लौट कर देखने की भी उसमें स्वस्थता न थी। वह डग भरती हुई वहाँ से चली गई।

अठारहवाँ प्रकरण

असहायावस्था

मृणालवती शीघ्रता से लौट आई। वह महल के विश्रान्ति-गृह में पहुँची और मृगछाला पर लेट गई। उसके मस्तिष्क को चैन न था; हृदय मे एक अज्ञात ताण्डव हो रहा था। उसके रोम-रोम से अग्नि ज्वालाएं निकल रही थी और वे क्षण प्रति क्षण बढ़ रही थीं। इतने वर्षों के जीवन मे उसने अभी तक ऐसे क्षोभ, ऐसी घबराहट और ऐसी ज्वालाओं का दर्शन नही किया था, और न उनकी शक्ति का अनुभव हो।

वासना-पूर्ण संलाप, पुरुषो का स्पर्श, पुरुष अथवा स्त्री का चुम्बन—इन सब से वह अपरिचित थी। उनके इस अचानक परिचय से वह त्रस्त हो गई। उसके अङ्ग अङ्ग कांपने लगे। उसे इस घोर कलङ्क से बचने का कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा।

"उस सरीखा निष्कलङ्क और जीवन-मुक्त से मुझ-जैसे पापाचारी का स्पर्श! क्या करे, जिव्हा काट डाले? दीवार से मस्तक फोड़ ले? अग्नि में भस्म हो जाय? यह कलङ्क किस प्रकार दूर होगा? यह सब कृत्य देखकर पृथ्वी रसातल में क्यों नही चली गई? सूर्य्य क्यों न थक गया? पृथ्वी माता ने उसे अपने हृदय मे स्थान क्यो नहीं दिया?" उसने सब प्रकार के आनन्द का त्याग कर दिया था—लोगो से भी

करवा दिया था। वह किस मुँह से बैठी रहे? उसकी व्याकुलता का पार न रहा। उसके आत्म-तिरस्कार का प्रवाह, उसकी शान्ति, बुद्धि और स्वस्थता को वहा ले गया; वह डूबते हुए मनुष्य की तरह गोते खाने लगी।

और, उसका अपमान! वह कौन है? सम्राट की कन्या, सम्राट की बहन, साम्राज्य की विधात्री—उसका यह अपमान! उसके मुख के चारो ओर असह्य ज्वालाएं उठने लगी; उस के नेत्रो से उबलते हुए जल की तरह अश्रुधारा बहने लगी। अधम, लम्पट, पापाचारी मुञ्ज ने उसके साथ ऐसा व्यवहार किया! उसे दगवाया जाय, उसका शिरच्छेद कराया जाय, उसके खण्ड-खण्ड कर दिये जायं, किन्तु वह अपमान कैसे मिट सकता है? कौन सा दण्ड उसके इस घोर दुर्व्यवहार को भुला सकता है?

अपनी असहायावस्था का ध्यान आते ही उसकी व्याकुलता की सीमा न रही— उसने घबराहट से हाथ-पाँव पछाड़े, हाथो को मला, दाँत पीसे। परन्तु सब विचार निरर्थक जान पड़े। मुञ्ज—पापी मुञ्ज—विजेता हुआ। और वह स्वतः अधम जान पडने लगी, कलंकित प्रतीत होने लगी। इस स्थिति से मुक्त होने का कोई मार्ग नही रह गया।

और उसे अपनी निर्जीवता का भान हुआ। उसकी आत्म-श्रद्धा, जो पहले केवल डिगने लगी थी, अब अदृष्ट हो गई। उसने मुञ्ज को पराजित करने के विचार बाँधे थे, अपनी--तैलप की—सत्ता के बल से उसको निराधार, निःसहाय करने का संकल्प किया था, अपनी विवेक-बुद्धि से उसे

लज्जित करने की आशा की थी— उसके ये सब विचार, सब आशाएँ, धूल में मिल गईं। सेना जिसे चाहे सेनापति माने, मालवा अथवा तैलङ्गण का चाहे जो राजा हो, वह स्वयं चाहे जैसी जीवन-मुक्त हो, किन्तु पृथ्वीवल्लभ मुञ्ज तो पृथ्वीवल्लभ ही बना रहा। वह लज्जित की गई है, यही विचार उसके मस्तिष्क मे चक्कर काटने लगे। वह अधमो से अधम था, किन्तु उसका प्रताप ज्यों-का-त्यों प्रकाशमान दृष्टि पड़ रहा था। उसका अनोखा और प्रभावशाली व्यक्तित्व ज्यों-का-त्यों अखण्ड दीख पड़ रहा था। उससे द्वेप रखने वाली तैलङ्गण की प्रजा को भी उसने नचा और गवा दिया था। उसकी-सी राजनीतिज्ञा को भी लज्जित कर दिया था; अपने प्रभुत्व की सत्ता से उसने उसकी-सी प्रभावशालिनी भयंकर स्त्री को भो अधमता का कटु अनुभव करा दिया था। हृदय पर अग्नि का-सा दाग पड़ने पर भी वह पूर्ववत् पृथ्वी-वल्लभ ही बना हुआ था।

मुञ्ज का तेजस्वी, प्रतापी और हँसता हुआ मुख-मण्डल उसकी दृष्टि के सामने आ गया। रणमल्ल ने जब उसका हाथ दागा था, और जिस समय रह स्वतः चीख पड़ी थी, उस समय भी उसके मुख की शान्ति अखण्ड थी, उसके नेत्र हँस रहे थे, उसके मुख की मधुरता में तनिक भी कटुता का मिश्रण नहीं हुआ था।

मुञ्ज की महत्ता का विचार करते हुए उसका अभिमान चूर्ण हो गया। निराशा से उसके गर्व की दीन अवस्था हो गई। वह मनुष्य नहीं था—देव था, वह पराजित होने वाला

नहीं था—दुर्जय था। वह स्वयं तैलप था। इन्द्र था। शूद्र और निर्जीवों का हन्ता भी केवल वही था। वही—पृथ्वी-वल्लभ !

वह मृगछाला पर पड़े-पड़े, पृथ्वी पर सिर पटकने लगी। उसके नेत्रों के अश्रु सूख गये; परन्तु हृदय का उद्वेग बढ़ता गया।

उन्नीसवाँ प्रकरण

कालरात्रि

मृणाल तड़प रही थी; परन्तु तड़पने से कभी किसी का दुःख कम हुआ है ? वह पृथ्वी पर से उठ कर टहलने लगी—खिड़की के सामने खड़ी हुई—द्वार की ओर जाकर लौट आई। उसकी जिव्हा सूख गई थी। बारबार चबाने से होठों पर रक्तिमा आ गई थी। निःसरित अश्रुओं से नेत्र लाल हो गये थे।'

वह पुनः आराधना करने बैठ गई। कठोरतम आसन लगाकर निर्द्वन्द्व-सिद्धि का साधन करने लगी। दासी भोजन की सूचना देने आई; परन्तु मृणाल को आसन लगाये देख वह चुपचाप चली गई।

रात्रि आ पहुँची। घड़ियाँ बीतने लगीं; परन्तु स्थिर आसन की तपश्चर्या साधते हुए मृणाल के मस्तिष्क मे स्वस्थता और एकाग्रता न आई।

पहले उसका हृदय गोते लगा रहा था, किन्तु अब वह डूब कर और निराधार होकर गहरे मे उतरने लगा। डूबते हुए मनुष्य की मृत्यु के समय, जिस प्रकार उसके मस्तिष्क के आगे, अपनी प्रियतमा की मूर्ति आ खड़ी होती है, उसी प्रकार अतल तल में जाते हुए उसके हृदय के आगे एक ही मुख रम रहा था—पृथ्वीवल्लभ का। समय

कब बीत गया, जान भी न पड़ा। उसके मस्तिष्क पर अज्ञान का आवरण-सा पड़ गया। धीरे-धीरे निद्रा का सञ्चार होने लगा।

वह निद्रित थी, या जागृत, इसका भी उसे ज्ञान नहीं था—वह स्वप्न देख रही थी या सत्य, इसकी भी उसे सुध नहीं थी। केवल एक मुख बार-बार दृष्टि पड़ रहा था—उसके अनेक रूपान्तर होते, फिर भी वह पूर्ववत् ही रहता। विशाल और आकर्षक नेत्रों से रस टपकता—सुन्दर और मधुर मुख एक अनोखी मोहनी से आमंत्रित करता। इसके साथ ही हृदय में एक कसक होने लगती—"यह कलंक कब दूर होगा?"

इस परिस्थिति में परिवर्तन होने लगा—अनेक नये प्रसङ्ग उपस्थित होने लगे। परन्तु वह मुख ज्यों-का-त्यों रहा। मृणाल में, उसे दृष्टि से ओझल करने की भी शक्ति नहीं रह गई। उसका मस्तक वक्ष की ओर नत हो गया।

मनोराज्य का विकास हुआ—मुख के बदले मुञ्ज साकार खड़ा हो गया। बन्दीगृह दिखलाई पड़ा—उसके अन्धकार में सहस्रों सूर्य्य की कान्ति से दीप्तिमान अनुपम नरोत्तम उसने देखा। उसका हाथ जलता हुआ ज्ञात हुआ, उससे ज्वालाएं निकलती हुईं मालूम हुईं और वे उसके रोम-रोम में व्याप्त हो गईं।

पैंतालीस वर्ष तक उसने ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया था। कभी किसी समय भी अनंग का अखण्ड शासन उसके अङ्ग पर नहीं हुआ। यौवन का निर्झर उद्भूत नहीं होने

पाया, उद्भवकाल के पहले ही वह पृथ्वी में समा गया था।

मृणाल की यह अग्नि अवश्य दुःसह हो गई; किन्तु उसकी ज्वालाएं आनन्द-मय प्रतीत हुईं। अर्द्ध-निद्रितावस्था मे मुञ्ज द्वारा किये गये चुम्बन का चैतन्य उसकी रग-रग मे व्याप्त हो गया।

उसने इस भयंकर असहायावस्था से मुक्त होने के लिए इस पाप-समाधि से जागृत होने के लिए, बहुत प्रयत्न किये; परन्तु उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह नाग-पाश से बँध गई है, और बड़े गहरे मे डूबती चली जा रही है। उद्धार का उसे कोई साधन न सूझ पड़ा।

अचानक फिर उसे मुञ्ज दिखलाई पड़ा—उसके अंग अंग से मोहकता टपक रही थी। जैसे ही वह उसकी ओर झपटा और उसे पकड़ कर रौंदने लगा, वह गिर पड़ी।

वह चौंक कर जाग पड़ी, जैसे बर्रों ने काट लिया हो। और खड़ी होकर विह्वलता से चारों ओर देखने लगी। उसके अङ्ग-अङ्ग में काँटे से चुभ रहे थे; उसे सूझ नहीं पड़ रहा था कि वह कहाँ है। उसकी समझ मे नही आ रहा था कि उसकी धमनियाँ कौन सा नृत्य कर रही हैं। बहुत कुछ विचारने पर भी उसको पता नही लगा कि आज उसका हृदय कौन सी आशा से पूरित होकर उछल रहा है।

उसने अंगड़ाई ली। हाथों को दबाया, आँखे मलीं; किन्तु मुञ्ज कहां था? वह स्वतः कहां थी? यह सब क्या हुआ था? वह कुछ भी न समझ सकी। केवल उन्मादिनी की भांति देखती रही। उसे ऐसा मालूम होने लगा मानो

उसके अंग-अंग उड़े जा रहे हों।

उसने हृदय पर हाथ रक्खा। वह एक नये प्रकार से धड़क रहा था। उसने मस्तक पर हाथ फेरा, कोई विचित्र ही भाव उछल रहे थे।

वह बैठ गई। पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसे अपनी स्थिति का ज्ञान हुआ। हृदय की एक-एक पंखुरी—शरीर का एक एक अङ्ग—क्रन्दन कर रहा था, चिल्ला रहा था! उन्हे मुक्ति की आवश्यकता थी।

अभिमानिनी तपस्विनी उन्मादिनी हो गई। उसे अपने अधःपतन का भान हुआ। युद्ध के लिए शस्त्र न थे—उत्साह न था। उसने विवश होकर पुष्प-धन्वा का आश्रय ग्रहण किया। त्रिपुरारि के तीसरे नेत्र से भस्म होने वाले द्वेषी देव ने उसे जलाना आरम्भ कर दिया। थोड़ी देर मे अग्नि-ज्वाला शान्त होगई; और शीतल समीर की शान्तिदायी लहरों को भुला देने वाली कुछ अनोखी लहरें उसके शरीर को थपथपाने लगी। वह नेत्र बन्द करके लेट गई और उन लहरो का अनुभव करने लगी।

ऐसी लहरो का उसने स्वप्न मे भी अनुभव नहीं किया था। उनसे वह भयभीत नही हुई, उनसे वह चकित नही हुई; वरन् एक अवर्णनीय आह्लाद का अनुभव करने लगी। वह अपने अंग-अंग का स्पर्श कर रही थी—रोम-रोम को आनन्दमय चेतन से जीवित कर रही थी। उसका हृदय एक अपरिचित; परन्तु आनन्द दायक गति से उछल रहा था; उसके हाथ की नसें एक अज्ञात उत्साह से सिमटने के लिए

तृषित हो रही थीं।

उसकी रग-रग में अद्भुत आनन्द का संचार हो रहा था उसने अपने हाथ नेत्रों पर रक्खे—धक्धक् करते हुए हृदय को जोर से दबाया और पैर एक दूसरे से मिलाये।

मुञ्ज की मानसिक मूर्ति का पद स्पर्श करके ही यह लहरें आ रही थीं, उसने उन्हें आने दिया। धीरे-धीरे श्वास बढ़ा – मुख रक्तवर्ण हो गया—मस्तिष्क मे विचारो का संचरण होने लगा। मादकता से उसका चित्त चंचल हो गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, कि मुञ्ज उसके निकट आ रहा है। उसने एक निःश्वास लिया। सब प्रयत्न छोड़ कर वह सुखमय पराधीनता मे जकड़ गई।

उसे निद्रा भली भाँति आई भी न थी, कि उसने तेजस्वी पृथ्वीवल्लभ को आते हुए देखा। वह आया, आनंद का प्रसार और उत्साह को प्रेरित करता। उससे लिपट गया। एक नहीं, पर सहस्र बार उसने मृणाल के मुख का चुम्बन किया। परन्तु वह लेटी रही—सुख-मय और निमन्त्रित विवशता मे।

न जाने क्या हो गया—हृदय को आघात पहुँचा—सुख के शिखर पर पहुँच कर वह पुनः नीचे गिर पड़ी। नेत्रो को खोल कर वह बैठ गई। उसका हृदय बुरी तरह धड़क रहा था। अनिर्वचनीय आनन्द की समाधि उसने प्राप्त की, और गंवा दी।

वह खड़ी हो गई, मुँह धोया और खिड़की के बाहर मुख निकाला। शीतल समीर के थपेड़े उस पर लगने लगे।

उसे ध्यान आया, वह गंगा की धारा की तरह कहाँ-से कहां वह गई! वैराग्य स्वरूप तपोनिधि महादेव की जटा से पतित होकर अधमता की बालुका मे लथड़ा रही थी।

वह कलंकित हो चुकी थी; उसके जीवन-भर के व्रत और नियम भंग हो गये थे। अब क्या करना चाहिए? भाई क्या कहेगा? भाभी क्या कहेगी? नगर और देश के लोग क्या कहेंगे? पापी मुञ्ज क्या कहेगा? इस कलंक से वह किस प्रकार जीवित रह सकेगी? जीवन की नव-विकसित कलिका को छिपाकर या उसे सुखाकर जीवन व्यतीत करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं था। आज रात को जिस आनन्द का उसे अनुभव हुआ था, उसके अतिरिक्त उसके लिए यह दिवस अस्पर्श्य ही था।

बीसवाँ प्रकरण

पाद-प्रक्षालन

प्रातःकाल से ही तैलपराज के दरबार में धूम मच गई। सामन्त और सेनापतियो का समूह एकत्र होने लगा।

पाद-प्रक्षालन, पाप-पुन्य का एक कुण्ड था। उसमें से, जो बन्दी राजा निर्विघ्न निकल आते, उनको सामन्त के रूप मे राज्य भोगने को आज्ञा दे दी जाती थी; और जो अभिमान के आवेश में आकर, उससे नही निकल पाते थे, वे हाथी के पैरों से बँधने या कारागृह मे जोवन व्यतीत करने को निमन्त्रण देते थे। स्वयं तैलप ने अनेक वार मुञ्जराज के पैर धोकर, तैलङ्गण के सिंहासन की प्रसादी प्राप्त की थी; आज तैलप के पेर धोकर, मुञ्ज को धारा के सिंहासन के लिए याचना करनी थी।

सब लोगो की धारणा थी कि मुञ्ज इस दण्ड को कभी स्वीकार नहीं करेगा। तो भी निश्चय था कि मुञ्ज के साथ कोई अत्याचार न किया जायगा; उसका गला न घोटा जायगा; क्योंकि वन्दी राजाओ का शरीर अस्पर्श्य समझा जाता था। इसी लिए तैलप ने विचार कर के इस युक्ति का सहारा लिया था। यदि मुञ्ज पाद-प्रक्षालन करेगा, तो उसकी कीर्ति सदा के लिए मिट जायगी और तैलप पृथ्वीवल्लभ कहलायगा; और यदि वह इसे स्वीकार न करेगा, तो

तैलप को इच्छित दण्ड देने का अधिकार प्राप्त हो जायगा ।

सारे नगर मे एक ही प्रश्न सब के मस्तिष्क मे चक्कर काट रहा था—"क्या मुञ्ज पाद-प्रक्षालन करेगा ?" कई मनुष्य यह सोच रहे थे कि यदि स्वीकार कर लेगा, तो ठीक ही है, इससे उसका जीवन भी बच जायगा, और तैलप की कीर्ति बढ़ेगा। बहुत से यह सोचते थे, कि यदि वह स्वीकार न करे, तो अच्छा है, इससे वह या तो वन्दी रहेगा, या प्राणो से हाथ धोयेगा और तैलप की कीर्ति बढ़ेगा। अनेक मनुष्य उसके रूप और गुण पर मुग्ध हो गये थे, वे यह आशा कर रहे थे, कि किसी भी प्रकार मुञ्ज बच जाय तो अच्छा है। परन्तु इस आशा को कोई प्रकट नही कर सकता था ।

राज-सभा मे जिनको आने का अधिकार था, वे सब आ गये। कोई भी इस अप्रतिम दृश्य के आनन्द को अपने हाथ से खोना नही चाहता था। सूर्यादय के वाद राज-सभा में तिल रखने के लिए भी स्थान न रह गया ।

जब सब लोग उपस्थित हो गये, तो महासामन्त को साथ लेकर तैलपराज आये। कुमार अकलकचरित भी साथ था। तैलप के सिंहासन के पास अन्दर जाने का एक द्वार था, उसमे मृणालवती, जक्कला और लक्ष्मी भी आकर बैठ गईं। मृणालवती का मुख कठोर और म्लान था; नेत्रो में भयंकर तेज था। उसकी मुख-मुद्रा देखकर ही लोगो ने समझ लिया कि मुञ्ज का अन्तकाल आ पहुँचा ।

तैलपराज मूँछों पर ताव देने लगे; उन्होंने दो सामन्तों

को, बन्दियों के लाने का आदेश किया।

कुछ ही समय मे सब बन्दो राजा आ गये। उन में सबसे आगे मुञ्ज था। उसके हाथ पीछे से बाँध दिये गये थे।

जिस प्रकार वह विजयी सेना मे चलता था, उसी प्रकार यहां आया। बिखरे हुए बाल उसकी कान्ति की वृद्धि कर रहे थे; दीप्त अभिमान उसके मुख का गौरव बढ़ा रहा था; उसकी गर्दन की मरोड़ उसकी स्वयं-भू-सत्ता को प्रकट कर रही थी। वह देव की तरह आया। राज-सभा केवल पशुओ की सभा है ऐसा प्रतीत होने लगा।

मृणाल ने उसे भरी सभा में देखा। उसका रोम-रोम खड़ा हो गया। रात्रि का अनुभव स्मरण करके नव-यावना की तरह उसके कपोलो पर आवेश की रेखाएँ खिंच गईं। उसने प्रयत्न किया कि उसके क्षोभ को, आवेश को, कोई देख न ले।

दिवस के प्रकाश में, उस नरेश के मोहक शरीर की एक-एक अपूर्व रेखा, उसने चोरों की तरह चुपचाप अपने हृदय मे अंकित कर ली—आंखो के आगे कल्पना से सजीव कर लीं।

मुञ्ज को लाकर तैलप के सिंहासन के आगे खड़ा किया गया। मुख पर एक गर्व-पूर्ण हास्य का प्रकाश करके वह निरपेक्ष और निश्चिन्त खड़ा रहा।

तैलप के आदेश से बन्दी-जनो ने उसकी स्तुति गाई। पश्चात् राजा ने महासामन्त की ओर घूमकर पूछा—"भोइलमराज,

कल जिन कवियो को छुड़ा ले गये हो, उनका क्या हुआ ?"

"वह बैठे है ।" कहकर जिस ओर धनंजय, रसनिधि और उसके मित्र बैठे थे उस ओर भीलम ने अँगुली से संकेत किया ।

"उनसे कहो कि कुछ सुनाये । उन्होने मुञ्ज को ऊँचा तो बहुत चढ़ा दिया, अब उसे नीचे उतारने मे सम्मिलित होगे न ?"

राजा की इस युक्ति से भीलम बडे चक्कर मे पड़ गया । परन्तु राज-सभा मे राजा का वचन कैसे भंग किया जा सकता था ? उसने आकर धनंजय से राजा का आदेश कह सुनाया ।

सब कवियो को रोमाञ्च हो आया । बहुतो ने रसनिधि की ओर घूमकर देखा ।

रसनिधि ने तुरन्त धनंजय से कहा—"महाराज, आप सरस्वती के दुलारे है, कुछ कहिए ।"

धनंजय ने नेत्रो से ही स्वीकार किया और 'हॉ' कह कर वह सामन्तो के बीच से होकर सिंहासन के निकट आया ।

ज्यो ही धनंजय सिंहासन के निकट पहुँचा कि दूसरी ओर देखते हुए मुञ्ज ने उस पर दृष्टिपात किया, और हँस पड़ा ।

हँसते हुए उसने कहा—"धनंजय, अवन्तिका का नाम न डूबने पावे ।"

नत होकर धनंजय बोला—"जो आज्ञा ।"

यह सुनकर तैलप चिढ़ गया। उसके कपाल पर क्रोध की रेखाएं खिंच गईं। उसने तिरस्कार पूर्वक पूछा—"क्या नाम है तुम्हारा ?"

धनञ्जय के उत्तर देने के पूर्व ही मुञ्जराज ने उच्च स्वर में कहा—"तैलप, इतना भी पता नही है ? जिसकी कविता सुनकर भगवती मयूरासनी अपनी वीणा छोड़ देती है; जिसके सुविख्यात नाम से अपरिचित रहनेवाला सदा नरक के-से अन्धकार मे रहता है, उस कवियो के भी कवि और अवन्तिका के कवि-श्रेष्ठ का नाम है—धनञ्जय।"

उस समय के कवियो को शोभा देने वाले शब्दों मे मुञ्ज ने यह सब कहा।

तैलप क्रोध से बोला—"तुझसे मैंने नहीं पूछा था।"

मुञ्ज ने शान्ति-पूर्वक कहा—"मै कब कहता हूँ कि मुझसे पूछा था। परन्तु अपने ही मुख से अपनी प्रशंसा कराते विनयशील पुरुषो की सभा में नहीं सुना गया।"

सभासदो के हृदय कांप उठे। तैलप जिस ओछेपन का अनुभव कर रहा था, वह सबको स्पष्ट दीख रहा था। इससे तैलप का क्रोध बढ़ गया, यह भी सब स्पष्ट देख रहे थे। इसका अनिश्चित परिणाम जानने के लिए सब लोग मस्तक उठा कर तैलप की ओर देखने लगे।

तैलप ने धनञ्जय से कहा—"अच्छा, कहो।"

धनञ्जय ने पहले महाकालेश्वर की प्रशंसा मे एक अनुष्टुप कहा और पश्चात् राजा की स्तुति का गान आरम्भ किया।

स्तुति के श्लोक की रचना बहुत ही सरस थी। उसमें पृथ्वी ने जिसे अपना नाथ बनाया है, उस राजराजेन्द्र की स्तुति थी। एक प्रकार वह तैलप की प्रशंसा मालूम होती थी; पर मुञ्ज की प्रशंसा भी इससे हो गई, यह प्रकट हो रहा था। तैलप कुछ समझ गया; पर वह रोष को दबा कर बोला—"शाबास, कविराज ! जाओ, बैठो।"

धनञ्जय नमन कर के अपने स्थान पर आ बैठा।

मृणालवती यह सब बड़े ध्यान से देखती और सुनती रही। जिस छटा से, जिस आधिपत्य से मुञ्ज सारी सभा मे शोभित हो रहा था, उसे देख कर मृणाल को बड़ा गर्व हुआ। और, ज्यो-ज्यो तैलप का भ्रू भंग बढ़ता गया, ज्यो-ज्यो उसके नेत्रो मे क्रूरता दृष्टि पड़ने लगी, त्यो-त्यो उसका हृदय भय से कॉपने लगा कि कही तैलप उसे मार डालने का आदेश न देदे।

धनञ्जय के बैठ जाने पर मुञ्ज ने तैलप की ओर देख कर पूछा—"क्यो तैलपराज, कवि कैसा मालूम हुआ ?"

मुञ्ज के इस निरपेक्ष और अर्द्ध तिरस्कृत प्रश्न से तैलप होठ चबाकर रह गया। सभा मे ऐसी शान्ति छा गई कि एक सुई गिरने का शब्द भी सुनाई पड़ सकता था। सब के हृदय क्षुब्ध हो गये।

तैलप की आँखें तलवार की धार की तरह तेज हो गईं। उसने खाँस कर गले को साफ करते हुए कहा—"मुञ्ज, तेरे पापो का घट भर गया है, तेरी राज-लक्ष्मी का नाश हो गया है। तू—"

मुञ्ज ने कहा—"कौन कहता है ?"

तैलप—"मै कहता हूं ।"

उत्तर मे मुञ्ज ने विनोद से हँस दिया और मौन हो गया।

"प्रतिष्ठा से जीवित रहने का अब एक ही मार्ग रह गया है—"

मुञ्ज ने इसकी परवा न की। वह निश्चिन्त होकर उस द्वार की ओर देखने लगा जहाँ मृणाल बैठी थी।

उस समय की कृत्रिम भाषा में तैलप ने फिर कहा—"जिन पदो से आज पृथ्वी काँप रही है, उनका प्रक्षालन करके अपने अपराधो की क्षमा माँग।"

दो सैनिकों ने मुञ्ज के हाथ की हथकड़ियां खोल दी, और एक सामन्त सुवर्ण की झारी मे जल लेकर आगे आ खड़ा हुआ। पाद-प्रक्षालन करवाने के लिए उत्सुक तैलप ने अपना पैर सिंहासन के नीचे रख दिया।

ज्यो ही मुञ्ज के हाथ छूटे कि उसकी स्वतंत्रता प्रकट होने लगी। गर्व से ऊपर देखा।

झारी लेकर खड़े हुए सामन्त ने कहा—"मुञ्जराज, चलिए, महाराज के पदो का प्रक्षालन कीजिए।"

मुञ्ज ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा। कहा—"सामन्त-राज, कहाँ है ताण्डव से त्रिभुवन को कंपा देने वाले चण्डीश्वर भगवान् महाकाल के प्रतापी पद, कि जिनको धोकर यह पृथ्वीवल्लभ पवित्र हो जाय ?

उत्तर की प्रतीक्षा करता हुआ मुञ्ज खड़ा रहा।

बेचारे झारी लिये हुए सामन्त की जीभ तालू से लग गई। तैलप की भवे भयंकर रूप से संकुचित हो गई। महासामन्त भोल्लम कोई उपाय सोचने लगा। कुछ सोच कर वह मीठे स्वर मे बोला—"अवन्तिनाथ, महाराज आहवमल्ल का पाद-प्रक्षालन करो; विजेता का यह परम्परागत अधिकार है।"

मुञ्ज तिरस्कार-पूर्वक हँस पड़ा। बोला—"स्यूनराज, पृथ्वोवल्लभ के पैर धो-धोकर जिसके हाथ अभी भली भाँति सूखे भी नही है, उस तैलप के मै पैर धोऊँ? क्या आप भ्रमित हो गये है?" मुञ्ज के शब्दो और नेत्रो मे तिरस्कार भरा हुआ था।

द्वार मे बैठी, अज्ञात विचारो से हृदय को भरती हुई मृणालवती मुञ्ज की ओर ही देखती रही।

तैलप के क्रोध की सीमा न रही। उसके नेत्रो मे अङ्गारे चमकने लगे। वह खड़ा हो गया। "अभिमानी, पापाचारी, अब भी तेरा गर्व गलित नही हुआ है?"

जिस प्रकार एक ऊँचा-पूरा बलिष्ठ मनुष्य किसी निःसहाय बालक से वार्त्तालाप करता है, उसी प्रकार तिरस्कार से हँसते हुए मुञ्ज ने कहा—"ऐसी डींग मारने से कही पृथ्वीवल्लभ बना जा सकता है?"

"क्या कह रहा है? दुष्ट, खड़ा रह।" तैलप ने उच्च स्वर से कहा। आधी सभा खड़ी हो गई।

तैलप ने चारो ओर क्रोध से देखा। उसके नेत्र विकराल हो गये। अङ्ग-अङ्ग क्रोध से कम्पित होने लगे।

"सामन्तो! क्या देख रहे हो? पकड़ो, इस पापी को

कराओ इससे पाद-प्रक्षालन !"

चार-पाँच सामन्त आगे आये, मुञ्ज की ओर बढ़े।

अपने प्रचण्ड शरीर को सीधा कर के वह निर्भयता से देखता हुआ खड़ा रहा। उसके नेत्र अनिमेष थे; मुख पर गर्व का हास्य था। वह अपनी गर्दन की मरोड़ से ही सब को भयभीत कर रहा था।

मृणाल ने यह सब देखा—और इस सब मे मुञ्ज का व्यक्तित्व कैसा अनोखा कैसा अ-प्रतिम और दुर्धर्ष था—यह भी देखा। उसे भी गर्व हुआ और वह मुञ्ज की विजय देखने के लिए एक टक देखती रही। उसके होठ मुंद गये। जो तेज मुञ्ज के नेत्रों मे था, वह उसके नेत्रों में भी आ गया। जो सामन्त आगे बढ़े थे, वे क्रमशः तैलप और मुञ्ज की ओर देखते हुए खड़े हो गये। किसी में साहस नही था कि मुञ्ज के निकट जाय।

तैलप होठ चबाकर बोला—"डूब मरो, जो इस तरह देख रहे हो। अकलङ्कचरित! तुझे भी लज्जा नही आती?"

कुमार और सामन्त मुञ्ज का हाथ पकड़ने के लिए बढ़े। भील्लम मन को मार कर मौन खड़ा रहा।

"आओ! डर क्यों रहे हो?" मुञ्ज ने हँसकर कहा; और उन पकड़ने के लिये आये हुए सामन्तो को उसने सरलता से छिन्न-भिन्न कर दिया।

राज-सभा मे कोलाहल मच गया। तिरस्कृत तैलप अन्य सामन्तो से कहने लगा—"क्या देख रहे हो?"

आठ-दस सामन्त टूट पड़े और उन्होने मुञ्ज के हाथ

पकड़ लिये। जिस हाथ को मृणाल ने [illegible] थी, उसमे से मांस खिंच आया। मृणाल ने उसे देखा और निःश्वास लिया। दूसरे ही क्षण वह भी नेत्रो को बन्द करके उठ खड़ी हुई।

मुञ्ज को पकड़ना एक बात थी, और उसे नत करके उससे पैर धुलवाना दूसरी। पर्वत-शिखर के समान, सबसे उच्च तथा अनत वह थोड़ी देर खड़ा रहा। सामन्तो के प्रयत्न निष्फल होने लगे। अन्त मे उन्होने मुञ्ज को घसीटना शुरू किया।

मुञ्ज मे अद्भुत बल था। पहले तो वह सरलता से हँसते हुए सबको थकाने लगा; परन्तु अन्त मे वह खड़ा नही रह सका। तैलप के मुख पर क्रूरता-पूर्ण हास्य छा गया।

एकाएक मुञ्ज शीघ्रता से आगे बढ़ा और जो सामन्त उसे खींच रहे थे, अचानक उनके हाथ छूट गये। झारी लिये खड़ा हुआ सामन्त निश्चिन्त भाव से खड़ा खड़ा यह खींचातानी का दृश्य देख रहा था। मुञ्ज बढ़ा और उसने अपने कन्धे से झारी मे धक्का मारा। सामन्त के हाथ से झारी छूट कर निकट खड़े हुए तैलपराज पर पड़ी। उसके सारे शरीर पर जल की वर्षा हो गई।

यह सब पल भर मे हो गया। सामन्तो ने मुञ्ज के हाथ छोड़ दिये। तैलप गिरते-गिरते मुकुट को सम्हालने लगा। और, मुञ्ज अकेला आनन्द से खड़ा हुआ उच्च-स्वर से हँसने लगा।

मृणाल द्वार की देहली पर आ खड़ी हुई।

तैलप की मुद्रा हास्य-जनक थी। उसके गौरव का नाश

हुआ था। उसने होंठ चबाये, ज़ोर से चिल्लाया, और म्यान से तलवार खींच ली।

सौ तलवारें म्यान से बाहर निकल पड़ी और मुञ्ज के चारो ओर रक्त-पिपासी तलवारो की घटा छागई। मुञ्ज निर्भयता से खड़ा रहा। सब तलवारों की धारो का उत्तर उसके नेत्रो के तेज की धारा दे रही थी।

"दुष्ट, अब इसका फल देख ले! मारो इस चाण्डाल को!!" तैलप ने आज्ञा दी।

तलवारों की झनझनाहट हुई।—मुञ्ज गर्व से देखता रहा।

अचानक एक स्वर चारो ओर गूंज उठा—"यह क्या कर रहे हो?"

क्रोध से ज्वलित जगदम्बा की तरह मृणालवती ने तैलप के निकट कूद कर इन शब्दो का उच्चारण किया। उस के नेत्रो मे निःसीम सत्ता चमक रही थी; उसके स्वर मे युद्ध की गर्जना थी।

समस्त तैलङ्गण जिस स्वर से कम्पित हो जाता था, उस स्वर को सुन कर सामन्तो की तलवारें नीचे झुक गईं। स्वयं तैलप भी लज्जित हो गया।

मृणाल ने क्रोध से कहा—"क्या कर रहे हो? लज्जा नहीं आती? एक निःशस्त्र नरेश पर शस्त्र चलाने को तैयार हुए हो? समस्त तैलङ्गण को कलंकित करने पर उतारू हुए हो? तैलपराज! यह शोभा नही देता! तुम्हारे धर्म-राज्य मे यह कुकृत्य!" उसकी छाती धड़क रही थी।

सब सुनते रहे; मुञ्ज मन-ही-मन हँस पड़ा।

"जाओ, सभा विसर्जित हो गई। मुञ्ज के विषय में फिर योग्य विचार किया जायगा। चलो भाई!" कहकर वह तैलप के सामने देखने लगी।

तैलप ने किंचित् रोष से मृणालवती को देखा, परन्तु दूसरे ही क्षण तैलप पर मृणाल का आतंक छा गया। मस्तक झुका कर वह मृणाल के साथ चला गया।

इक्कीसवाँ प्रकरण

भाई और बहन

अन्दर जाकर तैलप ने पूछा—"बहन, यह क्या किया ?"

मृणाल ने कहा—"तेरी कीर्ति की रक्षा की। राजाओ के शरीर युद्ध के अतिरिक्त सदैव अस्पर्श्य है।"

तलप मौन हो रहा।

"यदि वह पाद-प्रक्षालन न करेगा तो दूसरा दण्ड देना हमारे हाथ में है।"

"सारा संसार मेरी हसी करेगा।"

"नहीं ! तेरी निष्कलंक राजनीति की कीर्ति गायगा। इतना अपमान होने पर भी तू सत्य पर दृढ़ रहा, इससे अधिक किस यश की आशा करता है ?"

तैलप ने मस्तक झुका लिया।

थोड़ी देर तक कोई न बोला। पश्चात् तैलप ने कहा—"तो उसका क्या किया जाय ?"

"जो तुम कहोगे वही।"

"पिंजरे में उसे रक्खा नहीं जा सकता; मृत्यु-दण्ड उसे दिया नहीं जा सकता; तब उसका क्या किया जाय ?"

"अभी तो वह कारागृह मे है, फिर देख लेंगे। जल्दी क्या है ?"

"मेरी समझ मे कुछ भी नही आ रहा है।" कह कर

तैलप मुँह फेर कर जाने लगा ।

"आ जायगा, आ जायगा ।" कहकर मृणाल ने आश्वासन दिया ।

तैलप वहाँ से चला गया । अकेली मृणाल विचार निमग्न खड़ी रही । उसका हृदय हर्षित हो रहा था । उसने मुञ्ज को मृत्यु से बचाया था । उसकी कल्पना-शक्ति के बन्धन फिर से टूट गये—और वह प्रति-क्षण मुञ्ज के मोहक स्वरूप को पुनः आँखो के आगे लाने की चेष्टा करने लगी । नेत्रो को बन्द करके उसने यह रसमय प्रयत्न आरम्भ किया—और प्रयत्न सफल होने पर वह तनिक हँसी और जी मसोस कर वहाँ से चली गई ।

मान भंग होने से तैलप के हृदय को चैन नहीं था । वह एकान्त मे इधर-उधर घूम रहा था । उसके गर्व को बड़ा आघात पहुँचा था, उसकी स्थिति बड़ी ही तिरस्कार के योग्य हो रही थी यह बात भी निर्विवाद थी । सारा तैलङ्गण ही नही, सारा संसार इस पाद-प्रक्षालन को नही भूलेगा । उसे इसमे किंचित-मात्र सन्देह न था कि सब लोग उसी पर हँसेगे ।

वह मृणालवती के इस कार्य्य को न समझ सका । मुञ्ज उसका ऐसा अपमान करे, और मृणालवती उसे बचाये ? अपनी बहन पर उसे श्रद्धा थी; बहन का भी मुञ्ज के प्रति घोर तिरस्कार था । बहुत देर तक उसने विचार किया; पर कुछ समझ मे न आया ।

बाईसवाँ प्रकरण

विलास का स्वास्थ्य

पुरुष और स्त्री यदि प्रेम के फन्दे में न पड़ना चाहते हो तो उन्हें अपने जीवन मे इन दो विषयो से बचना चाहिए। एक काव्य-सेवन और दूसरा संगीत। काव्य और संगीत का सहयोग विमान की आवश्यकता पूरी करता है, और प्रेमीजन बिना साधन के आकाश मे चढ़कर, एक दूसरे के आधार से उड़ते हुए—गाढ़ी एकता से बँध जाते है। विलास और रसनिधि यह बात भूल गये।

रस का स्वाद चखते हुए विलास की पिपासा बढ़ती गई। रसनिधि भी अखंड रस-धारा बरसा कर उस पिपासा को शान्त करने का प्रयास करने लगा।

'मालती-माधव' के तूफानी प्रदेश से निकल कर वे म्लान-वदन 'उत्तर रामचरित' के हृदय-भेदक वातावरण मे विहार करने लगे। और वहाँ से 'शाकुन्तल' की स्वर्ण-मयी, मोह-मयी मधुरता का अनुभव करते हुए न जाने कहाँ भटक गये। इस इष्ट यात्रा मे अज्ञान बाला उन्मत्त-सी होगई, और प्रति पल विकसित होने वाली रसिकता से, काव्य की रंग बिरंगी तरंगों को निहारने लगी। उसकी आत्मा ही बहुरंगी नहीं हो गई; कभी-कभी अज्ञात रीति से उसके और रसनिधि के रंग का निराला मिश्रण भी होने लगा।

'पाद-प्रक्षालन' वाली राज-सभा के विसर्जन के पश्चात् सायंकाल को रसनिधि ने मंदिर मे बैठे-बैठे 'विक्रमोर्वशीय' नाटक समाप्त किया।

"अब क्या सुनाओगे ?"

रसनिधि दयार्द्र दृष्टि से उस बाला की ओर देखने लगा, उसके नेत्रों मे अश्रु भर आये। बोला—"विलासवती, बहुत हुआ। अब मै मान्यखेट मे नही रहूँगा।"

विलासवती विस्मित होकर देखती रही। बोली—"तुम कब जाओगे ?"

"तुम्हारे महाराज आज्ञा दे दें, तो इसी समय।"

विलासवती ने निःश्वास लिया। पूछा—"और लौटोगे—"

रसनिधि ने होठ को दाँतो से दबाते हुए कहा—"लौटूँगा कब ? जब भगवान् शंकर लायें।" उसके नेत्र चमकने लगे।

विलास ने पुनः निःश्वास लिया और धीमे स्वर मे वह बोली—"शिव शिव।"

"मुझे भी भोलानाथ को स्मरण करने की इच्छा होती है। मै तुम्हारे जीवन को व्यर्थ ही रस-मार्ग पर ले गया। मुझे दुःख हो रहा है।" कहकर, अपने नेत्रो मे अचानक आगये अश्रुओ को रसनिधि ने पोछ डाला।

"तुम क्यो रो रहे हो ?"

साहस के साथ रसनिधि ने कहा—"तुम्हारे लिए।"

किंचित् गौरव प्रकट करके विलास ने पूछा—"मेरे लिए ?"

"यहाँ तो सब पशु हैं, उनमे तुम्हारी क्या दशा होगी ?"

विलास के होठ फड़कने लगे।

रसनिधि खड़ा हो गया।

"मेरा वश हो, तो—"

विलास को न जाने किस अज्ञात कारण से कँपकँपी-सी आगई।

"तो—"

"तुमको अवन्तिका ले जाऊँ।"

अश्रु-पूर्ण नेत्रो से विलास देखती रही। अभी तीन दिन से ही वह उसे जानती थी; पर ऐसा प्रतीत हुआ कि वह मानो उसे बहुत पहले से जानती है।

विलासवती पृथ्वी को ओर देखती रही। रसनिधि स्नेह-स्निग्ध नेत्रो से विलास की ओर देखता रहा।

थोड़ी देर तक कोई न बोला।

एक कठोर-स्वर पीछे से सुनाई पड़ा—"क्यो रे! यहाँ क्या कर रहा है ?"

दोनों ने उस ओर घूम कर देखा। कुमार अकलंक-चरित मन्दिर की सीढ़ियो के नीचे यमराज के-से भयंकर रूप में खड़ा था। उसने कुछ सुना न था; परन्तु केवल रसनिधि की प्रेम-पूर्ण मुख-मुद्रा देखकर ही उसका हृदय खौल उठा था।

रसनिधि ने ज़ोर से होठ चबाया, चित्त ठिकाने आया। विलास बावली हो गई।

क्रुद्ध नेत्रों से कुमार देखने लगा; रसनिधि भी अनिमेष नेत्रों से उसकी ओर देख रहा था।

अकलंकचरित ने पूछा—"क्या कर रहे हो ?"

तनिक कठोरता से रसनिधि ने उत्तर दिया—"तुम देख तो रहे हो, कि मै क्या कर रहा हूँ ।"

"मैने कहा था न, कि यह मन्दिर तुम्हारे लिए नहीं है ?"

"मै मन्दिर मे नहीं आया था, महासामन्त की कुमारी से मिलने आया था।"

कुमार ने होठ चबाये—"किस लिए ?"

"मुझे इच्छा हुई कि अपने प्राण-रक्षक की पुत्री है; इससे मिलना ही चाहिए ।"

कुमार को कुछ सूझ न पड़ा कि क्या उत्तर दे ।

"विलासवती को तपश्चर्य्या भंग करने की चेष्टा न करो। जाओ अपना रास्ता लो ।"

रसनिधि हँस पड़ा । "तुम्हारे पिता आज्ञा दे दें, तो इसी समय चला जाऊँ ।"

"बस, अब जाओ ।"

"कुमारी को लेकर जाऊँगा, लक्ष्मीदेवी बुला रही है ।"

"अच्छा अभी आती है ।"

रसनिधि ने सोचा कि अब अधिक देर लगाना उचित नहीं है । वह धीरे-धीरे सीढ़ियों से उतरा और जाने लगा।

अकलंकचरित सीढ़ियो पर चढ़ा ।

"विलासवती, ऐसे मनुष्यो से वार्त्तालाप किया जाता है ?"

विलास नीचे देखती हुई बोली—"मनुष्य बुरा तो नहीं है।"

अकलंकचरित के नेत्रो में निष्ठुर तेज आ गया—"ऐसे मनुष्य से वार्त्तालाप करना, तैलङ्गण की भावी साम्राज्ञी को शोभा नहीं देता।"

विलास ने ऊपर देखा और अचानक उसके नेत्रो से अश्रु निकल पड़े। बहुत देर तक उसका गला रुँधा रहा। कुमार स्थिर नेत्रो से देखने लगा। विलास के अश्रुओ का प्रवाह कुछ कम हुआ, तो तिरस्कार से अकलंक ने कहा—"यही तुम्हारा वैराग्य है, और यही तुम्हारी स्वस्थता?"

विलास कुछ न बोली। कुमार चुपचाप वहाँ से चला गया।

उसके चले जाने पर विलास तृषार्त्त चातकी के समान रसनिधि को चारो ओर आँखो से खोजने लगी।

तेईसवाँ प्रकरण

तप की महासिद्धि

मृणाल सायंकाल होने की प्रतीक्षा करने लगी ।

संसार के अनेक दुःख सहन कर लिये जाते है, और अनेक दुःसह हो जाते हैं, परन्तु प्रेमी की प्रतीक्षा में जो वेदना होती है, उससे अधिक असह्य वेदना दूसरी नहीं । इस प्रकार की वेदना का अनुभव मृणाल को अपने जीवन मे पहली वार हुआ ।

अपनी धारणा को दूसरे से सिद्ध कराने की उसे टेव थी; परन्तु इस समय उसके पास कोई अवलम्ब न था । ऐसी निरवलम्ब अवस्था मे, इस वेदना मे समाये हुए सुख का उसने कभी अनुभव नहीं किया था। वह नववधू के समान बड़े उत्साह से सायंकाल की प्रतीक्षा कर रही थी ।

सूर्यास्त होने पर वह उठी, और धड़कते हुए हृदय को आश्वासन देती हुई मुञ्ज से मिलने के लिए चली ।

कारागृह के प्रहरियो ने राज्य-विधात्री को आते देखा, वे सिर नवाकर दूर हट गये। पाद-प्रक्षालन के समय होने वाले झगडे का समाचार समस्त मान्यखेट मे फैल गया था, और लोगो मे यह जिज्ञासा उत्पन्न हो गई थी कि देखें इसका किस प्रकार अन्त होता है ।

सैनिक भी नई नई गप्पें छोड़ रहे थे । उन्हे ऐसा

ज्ञात पड़ता था कि यह बड़ा विकट प्रसंग है । इस कारण, मृणाल का मुञ्ज से मिलने के लिए आना उनको कोई विचित्र नहीं जान पड़ा ।

मृणाल ने विचार किया कि लोक-लाज से बचने के लिए कोई बहाना निकालना चाहिए; अन्यथा मेरे यहाँ आने पर लोग बड़ी टीका करेंगे । उसने वहाँ खड़े हुए नायक से पूछा—

"केदारदत्त, उस पापी का क्या हाल है ?"

"आनन्द से सोता है । जैसा पहले था, अब भी है ।"

"कितना कठोर है ? इस पापी को भली भांति शिक्षा मिलनी चाहिए । तैलङ्गण की कीर्ति बढ़े और यह नत हो, तभी निस्तार है ।" इतना कह कर वह अन्दर गई । उसके स्वर में जो निश्चयात्मकता सर्वदा रहती थी, वह इस समय न थी । अपने को असत्य बोलते देख, उसे रोमाञ्च हो आया ।

परन्तु इस असत्य का पश्चात्ताप अधिक देर नहीं रहा । जैसे ही उसने कारागार मे प्रवेश किया कि मुञ्ज का स्वर सुन पड़ा—"क्यो, आगई न ? मैने कहा था न ?"

मृणाल का हृदय उन्मत्त हो गया । मुञ्ज के स्वरों की मोहिनी से वह अपने को भूल गई । विगत रात्रि में उसे जिस आनन्द का अनुभव हुआ था वह पुनः व्याप्त हो गया । उसे क्षोभ हुआ, वह लजा गई, और कॉपते हुए हाथो को एक दूसरे से मिलाकर खड़ी हो गई । पैरों ने आगे बढ़ना अस्वीकार कर दिया ।

मुञ्ज ने हंसते हुए कहा—"मृणालवती, अब इस प्रकार लजाने से काम न चलेगा। अब तुम्हारा निस्तार नही है।"

मृणाल ने बड़ा प्रयत्न किया; परन्तु कुछ न बोल सकी। विचार स्थिर नही हुए। स्वस्थता नहीं आई। उसे अपने पर तिरस्कार हुआ, स्वस्थता प्राप्त करने के उसके सब प्रयत्न निष्फल हो गये।

नेत्र-तेज के सुदर्शन-चक्र से मृणाल का रक्षण करते हुए, धरणीधर के समान पृथ्वीवल्लभ निकट आकर खडा हो गया।

"घबरा क्यो गईं? अब तक प्रेत थीं—अब सजीव हो गईं।" इतना कहकर मुञ्ज ने हाथ फैलाये।

मृणाल, क्षोभ की इस अवस्था मे भी, चौंक पड़ी और पीछे हट गई। मुञ्ज ने हाथो को बढ़ा कर जोर से मृणाल को पकड़ लिया।

मृणाल, वृद्धावस्था के किनारे खड़ी हुई, उग्र तापसी, तड़फड़ाती, काँपती हुई, भाग जाने की इच्छा से कम्पित होती हुई, आनन्द की अवधि का अनुभव करती हुई, खडी रही। मुञ्ज ने नीचे झुककर चुम्बन किया।

आनन्द के मद मे, पश्चात्ताप के क्रोध मे, क्षोभ की अनिश्चित अवस्था मे उसने बल लगाकर छूटने का प्रयत्न किया; परन्तु मुंज हॅसते हॅसते इस प्रकार उसका हाथ पकड़े रहा जैसे वह कोई नन्ही बच्ची हो। अन्त मे मृणाल बोली—"यह क्या कर रहे हो?"

"मृणालवती, आनन्द का अनुभव कर रहा हूॅ और

करा रहा हूँ ।" यह कह कर वह हँस पड़ा।

मृणाल ज़ोर से तड़फड़ाने लगी, मुञ्ज ने उसे छोड़ दिया। वह उछल कर दूर जा खड़ी हुई।

"तुम मुझे कलंकित करते हो—मुझे भ्रष्ट करते हो; मेरे तप पर पानी फेरते हो।" गहरा श्वास लेते हुए मृणाल ने इन शब्दों का उच्चारण किया।

"मृणालवती, फिर ढोंग कर रही हो? कलङ्क पापियों को लगता है, भ्रष्टता अशुद्ध होने पर आती है, और तप पर उनके पानी फिरता है जो निर्बल होते हैं। आनन्द-समाधि का अनुभव करते हुए कभी कलङ्क नहीं लगता, कभी भ्रष्टता नहीं आती। यह तो तप की महासिद्धि है। आनन्द की जो अरुचि है उसी का नाम रोग है। अब तुम रोग से मुक्त हो गई—अभी तक नहीं थी। बोलो, कभी ऐसे सुख का अनुभव किया था?"

"तुमने कैसे जाना?"

मुञ्ज हँस पड़ा।

"जो रोग से मुक्त होता है, वह तुरन्त ही नीरोग को पहचान लेता है। मृणालवती, क्षण-भंगुर जीवन मे आनन्द का अनुभव करने के अतिरिक्त और किसी बात के लिए समय नहीं है। मुझे देखा, परखा, तब तुम यह बात समझीं।"

ज़रा हँस कर मृणाल ने कहा—"मुञ्जराज, तुम बड़े अद्भुत हो।"

"नहीं, केवल अनुभवी हूँ, और तुमको अनुभव कराने के लिए ही मुझे विधि ने यहाँ भेजा है। नहीं तो

मुझे यह कारागृह-वास क्यों करना पड़ता ?" इतना कहकर मुञ्ज ने हाथ बढ़ाये और मृणाल को पकड़ कर फिर खींच लिया।

धीरे-धीरे खिंच कर मृणाल पुनः पृथ्वीवल्लभ के विशाल वक्ष से चिपट गई।

मृणाल ने कलंक के विचार को, क्षोभ और पश्चात्ताप को दूर कर दिया। अनेक वर्षों की दबी हुई तरंगें आगे बढ़ने लगीं।

मुञ्ज ज्यों का त्यों स्वस्थ था। क्षिप्रा की तरङ्गों में अवन्तिका की मद-भरी सुन्दरियों के साथ जिस आनन्द से वह बातें करता था, उसी आनन्द से अर्द्ध वृद्धा और कुरूपा तापसी से वार्त्तालाप कर रहा था।

दूर से घण्टे का स्वर सुन पड़ा और बाहर किसी के पैरों की खड़खड़ाहट हुई। मृणाल को समय और स्थान का भान हुआ।

"पृथ्वीवल्लभ, अब मुझे जाना चाहिये।"

"किसलिए ?"

"मेरी दासियाँ जान जायँगी, तो क्या होगा ? और तलपराज—"

"भले ही जान जायँ। हम कोई अपराध थोड़े ही कर रहे हैं ?"

मृणाल ने हँसकर होंठ चबाते हुए कहा—"तुम्हारी निर्लज्जता की सीमा नहीं है।"

"क्यों ?"

"तुमको किसी की परवा नहीं।"

"परवा किस लिए हो ? जो सेवक हो उसे परवा हो, अधम हो उसे परवा हो, हमें परवा किस बात की ? कभी सिंह को भी लज्जित होते देखा है ?"

"वास्तव मे तुम पृथ्वीवल्लभ हो।"

"यह तो मै तुमसे और तुम्हारे भाई से कभी से कह रहा हूँ।"

मै तुम्हें पकड़ लाई—और अन्त मे मै स्वयं ही पकड़ी गई।"

"मै जानता था।"

बाहर से किसी ने द्वार खोलने का प्रयत्न किया।

मृणाल तुरन्त पीछे हट गई और पूछा—"कौन है ?"

केदारदत्त द्वार खोल कर आया। बोला—"महाराज आपको बुला रहे है।"

कृत्रिम गाम्भीर्य से मृणाल बोली—"कह दो, आती हूँ। मुञ्ज, मैंने जो कहा है, याद रखना।"

मुञ्ज ने छल-पूर्ण हास्य से कहा—"तुम्हारे लिए अभी बहुत कुछ शेष है। हो सका, तो फिर मिलूँगा।"

मृणाल के प्रेम-पूर्ण नेत्रो से एक मोहक कटाक्ष-बाण छूट गया। सामने खड़े हुए, विलास-युद्ध के महारथी ने उसे शान्त-भाव से हँसते हँसते झेल लिया।

———

चौबीसवाँ प्रकरण

भोज

नये प्रणयी की-सी उत्साह-पूर्ण दृष्टि से वह मृणाल की ओर देखता रहा। जब वह चली गई, तो वह हँसा, घूमा, और निश्चिन्तता से शयन करने के लिए एक कोने मे जाकर लेट गया। कुछ ही क्षण मे उसकी सेवा मे सर्वदा उपस्थित रहने वाली निद्रादेवी उस पर प्रसन्न हो गईं।

कुछ समय मे पृथ्वी की गहराई से आता हुआ एक स्वर सुनाई पड़ने लगा। यह प्रतीत हो रहा था, जैसे कोई पृथ्वी को खोद रहा है। धीरे-धीरे वह स्वर बिलकुल निकट आने लगा।

मुञ्ज ने धीरे से आँखे खोली और कानो को लगाकर सुनने लगा। अभी पहले जहाँ वह सो रहा था; वहाँ उस पत्थर के नीचे, कोई खोदता हुआ जान पड़ा।

मुञ्ज वहाँ से हट गया और अपने आप हँसने लगा। उसके होठ तिरस्कार से फड़क उठे। उसने सोचा कि तैलप ने छिपे छिपे उसकी हत्या कराने के लिए इन मनुष्यो को भेजा है।

"बेचारे तैलप को और कोई मार्ग न मिला!" यह कह कर वह आगे के कोने मे जाकर, शान्ति से खड़ा हो गया।

कुछ क्षण बीते और पत्थर हिलने लगा। दूसरे ही

क्षण वह ऊँचा उठ आया और किसी ने नीचे से अपना सिर निकाला।

"महाराज !"

शान्ति से मुञ्ज ने पूछा—"कौन है ?"

"मैं हूँ—भोज।" कहकर आगत व्यक्ति ने चकमक घिसकर प्रकाश किया।

"कौन, भोज ? तू यहाँ कैसे आया ?"

भोज, रसनिधि के नाम से सम्बोधित पुरुष ही था। मशाल को भूमि पर रख, सुरंग से उछल कर वह मुञ्ज के सामने आया और मुञ्ज उससे लिपट गया।

"वत्स, कहाँ से आ गया ?"

रसनिधि (भोज) के उत्तर देने के पहले ही सुरङ्ग से धनञ्जय और दो-तीन कवि भी कूदकर ऊपर आगये।

"अहाहा ! कैसे हो, धनंजय ! हलायुध ! अग्निमित्र !" कहकर मुञ्ज उन सब से लिपट पड़ा।

हलायुध ने भूमि पर रखी हुई मशाल को उठा कर ऊपर रख दिया।

"कवियो ! यह क्या ?"

भोज बोला—"महाराज, आपको बचाने के लिये।"

मुञ्ज हँस पड़ा। "परन्तु तू आज प्रातःकाल इन कवियो मे कैसे आ गया ?"

"महाराज ! सेना तितर-बितर हो गई और आप जब बन्दी हो गये, तो मैं वेष बदल कर लोगों के समूह में यहाँ आ गया।"

मुञ्ज ने कहा—"और मुझे बचाने का मार्ग खोज निकाला! ऐसे भयंकर कार्य्य मे क्यो हाथ डाला ?"

"महाराज ! आपके बिना हम कैसे रह सकते है ?"

"पगले, तो फिर तू राज्य कब करेगा ?"

"महाराज ! मुझे राज्य-लक्ष्मी की तृष्णा नही है।"

स्नेह से हँस कर मुञ्ज ने कहा—"जब मैंने तुझे मार डालने के लिए भेजा था, तब तो तूने कुछ और ही बात कही थी। मुझसे क्या कहा था, स्मरण है ?—

"नैकेनापि समं गता वसुमती मुंज त्वया यास्यति *"

भोज ने सुरङ्ग दिखलाते हुए कहा—"इसी कारण मुझे धरणी को अनाथा नही बनाना है, चलिए !"

"परन्तु मान्यखेट के बाहर तू कैसे ले चलेगा ?"

"इसका भी प्रबन्ध कर लिया है। आधे प्रहर मे हम अवन्तिका का मार्ग पकड़ लेंगे। चलिये, अब विलम्ब करने का काम नही है।"

"किसलिए यह कष्ट उठाया ?"

"महाराज, यह बात करने का समय नहीं।"

शान्त-भाव से मुञ्ज ने कहा—"क्यो नही है ? ऐसा आनन्द भला कहाँ प्राप्त हो सकता है ?"

"परन्तु, कोई आ जायगा, तो पकड़े जायँगे ?

*भोज को मार डालने के लिए जब मुञ्ज ने हत्यारों को भेजा था, तब उसने कटाक्ष से कहा था कि—"हे मुञ्ज ! किसी भी राजा के साथ जो पृथ्वी नही गई, वह तेरे साथ जायगी !"

"यह तुमने किस प्रकार जाना कि यहाँ से निकलते समय नहीं पकड़े जायँगे ? मुझे तुम किस प्रकार बचाने वाले थे ?"

धनञ्जय अधीर होकर बोला—"प्रभो ! नगर के बाहर निकलने वाली सुरङ्ग का पता लग गया है।"

स्वस्थता से पृथ्वीवल्लभ ने कहा—"सुरङ्ग का पता लग गया है, तो क्या हुआ ? तुम भी ऐसे भ्रम मे पड़ गये ? अमात्य रुद्रादित्य की भविष्यवाणी भूल गये ? उसने क्या कहा था ? 'पृथ्वीवल्लभ, जीवन में एक ही बार गोदावरी को लाँघ कर जायगा, दूसरी बार नहीं।' मै एक बार गोदावरी को लाँघ चुका।"

भोज अधीर हो गया। बोला—"महाराज, भविष्यवाणी तो भगवान् भास्कराचार्य्य की भी सत्य नहीं निकली। क्या उसी के आधार से आप यहाँ रहेंगे ?

मुञ्ज हँस पड़ा—"भोज ! भोज ! तुम बड़े उतावले हो। मै आज नहीं चल सकूँगा।"

चारो व्यक्ति स्तब्ध हो गये।

"और, कल तक तो न जाने क्या हो सकता है ?"

लापरवाही से मुञ्ज ने कहा—"होगा क्या ? सूर्य्य का उदय और अस्त।"

धनञ्जय ने पूछा—"परन्तु आज चलने मे कौन-सी बाधा है ?"

मुञ्ज फिर हँस पड़ा।—"मुझे अभिसारिका का आदर करना है।"

"हें !" धनंजय और भोज चौंक कर बोल उठे ।

"घबरा क्यो गये ? कारागृह का अन्धकार कहीं कामबाण को भी रोक सकता है ? नही कविराज, जहाँ विश्व-व्यापी परब्रह्म भी नही पहुँच सकता, वहाँ ये बाण त्रास उत्पन्न कर देते हैं—भूल गये ?"

भोज दुःखित होकर होंठ चबाने लगा । धनंजय पृथ्वी-वल्लभ की लापरवाही देखकर स्तब्ध हो गया । उसने हँसकर कहा—"महाराज, यहाँ ऐसा कौन मिल गया ?

"तैलङ्गण की महातपस्विनी, तैलप की बहन !"

धनंजय ने पूछा—"क्या कहते है ?"

भोज को रोमाञ्च-सा हो आया । हलायुध और अग्नि-मित्र कुछ विचारते हुए कहने लगे कि—"यह सत्य है या स्वप्न ?"

"सत्य है । वह बेचारी विरहाग्नि मे जल कर मर रही है ।"

भोज से चुप न रहा गया ।—"महाराज, इस समय तो कृपा कीजिए । हम पर नही, तो अवन्तिका पर ही ।"

भोज का क्रोध देखकर मुञ्ज हँस पडा । "बेटा, प्राण त्यागे जा सकते है; पर अभिसारिका को दिया हुआ वचन कही तोड़ा जा सकता है ? तुम अभी लड़के हो ।"

चारो व्यक्ति एक-दूसरे को ओर देखने लगे । वे मुञ्ज को जानते थे । उन्हें ज्ञात था कि वह निश्चल है ।

"तो कल कब चलियेगा ?"

"मध्यरात्रि मे ।"

भोज ने अन्तिम प्रयत्न किया—"महाराज, एक दिन मे न जाने क्या हो जाय ?"

"हो जाने दो, इससे क्या ?"

भोज मौन हो गया। यह न सूझ पड़ा कि इसका उत्तर क्या दिया जाय। उसने एक निःश्वास लिया।

"अच्छी बात है। जीवित रहे, तो कल रात्रि को ही देखा जायगा।"

"मुझे और मृणाल—दोनो को ले चलने की तैयारी कर रखना।"

इस शान्ति को वे सहन नही कर सके। मौन होकर चारो सुरंग मे उतर गये।

सुरंग के मुख पर पत्थर रखकर पृथ्वीवल्लभ उस पर सो गया। थोड़ी देर मे उसे निद्रा आ गई।

उस ओर, सुरंग में से भोज और कवि-गण दुःखित होते हुए बाहर निकले।

भोज ने कहा—"कविराज, यह भी कोई मनुष्य है ?"

"नहीं, देव है।"

"मैने तो क्रोध मे कहा था कि पृथ्वी इसके साथ जायगी ! परन्तु ये तो यह मान बैठे है कि अवश्य जायगी।"

"यही उनकी खूबी है।" यह कहकर थका हुआ धनंजय, पृथ्वी पर बैठ गया।

पच्चीसवाँ प्रकरण

मुंज

युवावस्था में प्रणय निःस्वार्थ और पवित्र होता है; प्रौढ़ावस्था मे क्षमाशील और ज्ञान-पूर्ण; वृद्धावस्था इसके लिए नहीं है। और यदि इस अवस्था मे वह अतिथि बन जाता है तो इन चारो मे से एक भी गुण उसे प्राप्त नही होता।

यह प्रणय दबी हुई सहानुभूतियो का अस्वाभाविक अन्धड़ होता है, या अत्यन्त विषयी स्वभाव की लालसा का परिणाम। मृणालवती का प्रणय इन्ही मे से किसी प्रकार का था। उसको एक ही वस्तु का ध्यान था—अपने भयंकर हृदय को संतुष्ट करने का। उसमे सुकोमल, अनुभव-हीन बालिका की-सी कल्पनाशक्ति और अज्ञानता न थी और इसीसे वह किसी अल्प-वयस्का बाला की भाँति प्रणयी का पूजन नही करती थी, उसकी मूर्ति का मानसिक अर्घ्य से आराधन नहीं करती थी, उसके आचार-विचारो के मनन मे ही तल्लीन नहीं रहती थी। विषय-तृप्ति से चतुरा बनी हुई, अनुकूलता और शान्ति का सेवन करती हुई, मध्या की भांति भी वह प्रणयी को स्नेह से नही देखती थी, और न उसकी सेवा मे आनन्द ही मानती थी।

मृणाल मे बारह वर्ष की नवोढ़ा का अज्ञान था—सत्रह वर्ष की रसिकता का असन्तोष था—प्रौढ़ा से भी अधिक

मस्ती थी—वृद्धा का कल्पनाहीन, अनुभवी स्वार्थी मस्तिष्क था—ब्रह्मचारिणी का शरीर-बल था—और, उग्र तापसी की कार्य-साधना। उसे देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो देव-पद से पतित दुर्गा ने मद-मत्त पशु का स्वरूप लेकर, अननुभूत लालसा की तृप्ति के लिए अवतार लिया हो।

वह आनन्द मे थी, वायु मे उड़ रही थी। उसके प्रवीण मस्तिष्क मे निर्णय हो गया था—मुञ्ज जीवन-भर बन्दी रहेगा। उसकी इच्छा होते ही तैलप उसे बन्दीगृह मे सुखपूर्वक रखेगा; फिर ऐसा कौन है, जो उसके प्रेम मे विघ्न डाल सके?

उसने अपनी सहानुभूतियो को "प्रेम" शब्द की संज्ञा दी थी। उसका यह प्रेम भी उसके स्वभाव के योग्य था। जिस प्रकार महत्वाकांक्षा को पूर्ण करने के लिए उसने पृथ्वीवल्लभ को विजित किया था, उसी प्रकार लालसा को संतुष्ट करने के लिए अब उसने मुञ्ज को विजयी बनाया था। एक अवन्तिनाथ के प्रताप से उत्पन्न हुई थी,—दूसरी उसके अप्रतिम सौन्दर्य्य से; और उसे प्रतीत हुआ कि प्रतापी मुञ्ज को बन्दीगृह मे रखने ही से उसकी ये दोनो इच्छाएँ सन्तोष पा सकेगी।

इस आत्म-स्तोत्र का पाठ करने में वह भूल गई कि उसके और मुञ्ज के प्रणय प्रसंग मे विजेता कौन था। उसकी धारणा हो गई कि वह स्वयं ही विजेता थी।

रात्रि व्यतीत हुई। वह उठ बैठी और फिर उसे इच्छा हुई कि जाकर मुञ्ज का मुख देख आये। वह वहाँ से निकल कर कारागृह मे पहुँची।

उसे आते हुए देखकर प्रहरी को बेचारे बन्दी पर दया आई। उसे प्रतीत हुआ कि यह भयंकर राज्यविधात्री इतनी वार मुञ्ज के पास आती है इसका परिणाम यही होगा कि वह बुरी मौत मारा जायगा। मृणाल के स्वभाव और राजनीति को लोग क्रूर मानते थे। इसलिए प्रहरी ने सोचा कि उसके मिलने का अभिप्राय क्रूरता-रहित हो ही नहीं सकता।

मृणाल को देखते ही, उदयोन्मुख सूर्य्य की किरणों के समान किरणें मुञ्ज के नेत्रों से निकलीं। थोड़ी देर बातचीत हुई। नेत्र एक-दूसरे के सामने नृत्य करने लगे, और मुञ्ज ने बात चलाई—"अच्छा हुआ, तुम आगईं।" इतना कहकर उसने प्रेम से मृणाल के कंधे पर हाथ रख दिया।

"क्यों?"

"मैं विचार कर रहा था, कि इस प्रकार चोरी छिपे जीवन कैसे व्यतीत होगा?"

"और दूसरा मार्ग ही कौन है? कुछ समय पश्चात् कदाचित् कोई मार्ग सूझ जाय।"

"हम कोई बालक तो हैं नहीं कि व्यर्थ ही समय खो दें।" यह कहकर मुञ्ज हँस पड़ा। बोला—"तुम्हारे भी बाल सफेद हो चले हैं, और मेरी अवस्था भी पचास की हो गई।"

"क्या कह रहे हो? मैंने तो सोचा था, कि—"

"कि मैं बहुत छोटा हूँ, क्यों?"

"हाँ, न तो एक बाल ही सफेद हुआ, और न कपाल

पर ही बल पड़ा। तुम तो बड़े अद्‌भुत हो।"

मुञ्ज ने कहा—"जैसा हृदय होता है, वैसी ही वयस् भी हो जाती है। तुम यहाँ पर चैन से सुख का भोग नहीं कर सकती।"

"क्यों ?"

"मैं देश का शत्रु हूँ, तुम्हारा भाई मेरा शत्रु है। तुमको सब लोग तपस्विनी मानते हैं और राज-माता का सम्मान देते हैं। तनिक भी ज्ञात हो जायगा, तो यहाँ के लोग तुम्हें जीवित नहीं छोड़ेंगे।"

"यहाँ मुझे कौन पूछनेवाला है ?"

"जहाँ यह प्रकट होगया कि तुम्हारी तपस्या भंग हो गई है, तो पूछना तो दूर, तुम्हें लोग खा डालेंगे।"

मृणाल मौन होगई। मुञ्ज ने स्नेह से अपना हाथ उसके कन्धे पर रखा और उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा।

"तब कौन सा मार्ग है ?"

"एक तो यह कि तुम मेरा विचार करना छोड़ दो, और पुनः अपना आडम्बर फैलाओ।"

मृणाल मद-भरे नेत्रों से मुञ्ज की ओर देखती रही! उसके नेत्र स्पष्टतया उत्तर दे रहे थे कि इस मार्ग का ग्रहण करना असम्भव है।

मृणाल के चेहरे का भाव देखकर मुञ्ज ने कहा—"यदि यह नहीं हो सकता, तो तैलप के सिंहासन पर तुम बैठो।"

"इस समय भी तो ऐसा ही है।"

"कौन कहता है ? सिंहासन के निकट बैठने और उस

पर आसीन होने में आकाश-पाताल का अन्तर है।"

मुञ्ज के कथन का भाव न समझ कर मृणाल ने पूछा—"सिंहासन पर कैसे बैठा जा सकता है?"

शान्त भाव से पृथ्वीवल्लभ ने कहा—"तैलप को मार डालो।"

मृणाल चौंक कर पीछे हट गई और बोली—"यह कैसे हो सकता है?"

मधुर स्वर मे मुञ्ज बोला—"बड़ी सरलता से। मुझे रात्रि मे उसके पास ले चलो। क्षण भर मे ही वह अपने ठिकाने पहुँच जायगा।"

"ओह! परन्तु वह तो मेरा भाई है। पुत्र के समान मैंने उसे पाला है। उसका वध कैसे किया जा सकता है?"

"तो तीसरा मार्ग इससे भी कठोर है।"

मृणाल ने पूछा—"वह कौन सा?"

"मेरे साथ चलो। तुमको ले जाकर मै अवन्तिका की साम्राज्ञी बनाऊँगा।"

मृणाल चौंक पड़ी। मुञ्ज की भयंकर और असंभव-सी बातो से वह उन्मादिनी-सी हो गई थी।

"क्या कह रहे हो?"

हँस कर मुञ्ज ने मृणालवती का चुम्बन कर लिया और धीरे से उसकी एक सफेद लट अँगुलियो से उठा ली।

"महाकालेश्वर भगवान की छत्र-छाया मे ही पृथ्वी का महाप्रतापी सिंहासन है। उस पर अभी तक केवल मै ही था; परन्तु अब उस पर हम दो जने बैठ सकेंगे।"

"परन्तु मैं—तैलप की बहन—"

"हाँ। तैलंगण के सिंहासन की अपेक्षा एक ही सिंहासन अधिक प्रतापी है—अवन्तिका का। तैलप की बहन वहीं शोभा देगी।"

"परन्तु—"

"तब चौथा मार्ग यहाँ पर इसी प्रकार रहने का है। इसमें मुझे कुछ नहीं, परन्तु लोग तुमको क्या कहेंगे? न तुम पूरी तपस्विनी ही रहीं—और न अखण्ड आनन्द ही लूटा; न घर की रही न घाट की।" इतना कहकर निश्चिन्त भाव से हँसकर मुञ्ज जरा आगे बढ़ा।

मृणाल देखती रही। उसे इस तेजस्वी पुरुष के बिना जीवित रहना असंभव प्रतीत हुआ। धीरे से उसने उसके मुख की एक-एक रेखा पर दृष्टिपात किया। उसने सोचा—इस मनुष्य को अपना बनाने के लिए जो भी किया जाय सो थोड़ा है।

मृणाल के कंधे पर हाथ रखकर, उसे अपनी ओर खींचते हुए मुञ्ज ने पूछा—"क्यों, क्या विचार है?"

मृणाल ने आवेश में आकर मुञ्ज के दोनों हाथ पकड़ लिये। कहा—"पृथ्वीवल्लभ, तुमने मुझे उन्मादिनी बना दिया है। बोलो, क्या करूँ? मुझसे मेरे भाई की हत्या नहीं की जा सकती, परन्तु अवन्तिका चल...।" आवेश से उसका हृदय धक् धक् कर रहा था।

"आज रात्रि को।"

मृणाल ने चकित होकर पूछा—"आज रात्रि को! यह

किस प्रकार ?"

"ठीक मध्यरात्रि को यहाँ आना। यहाँ से जाने का मार्ग मिल जायगा।"

"परन्तु किस प्रकार ?"

"यदि कामदेव को मार्ग की आवश्यकता हो, तो कारागृह कहीं रोक सकता है ?" कहकर मुञ्ज ने पुनः उसका चुम्बन कर लिया और उसे अपने हृदय से लगा लिया।

थोड़ी देर मे मृणाल अलग हो गई। बोली—"पर अवन्तिका मे तुम्हारी पटरानी तो होगी ?"

मुञ्ज खिलखिला कर हँस पड़ा—"जो मेरे हृदय में बस गई, वही पटरानी है।"

मृणाल पुनः मुञ्ज से लिपट गई। मुञ्ज बोला—"तो आज रात्रि को अवश्य।"

"पृथ्वीवल्लभ जिस बात के लिए कह रहा हो, वहाँ भी कोई 'न' कह सकता है ?" कह कर मृणाल चली गई।

छब्बीसवाँ प्रकरण

लक्ष्मीदेवी की स्वीकृति

दूसरे दिन रसनिधि ने लक्ष्मीदेवी को खोज निकाला। वह एक ओर असन्तोष की मूर्ति बनकर रसनिधि के षड्यन्त्र का पोषण करने में और दूसरी ओर महासामन्त में असन्तोष का विष बोने में व्यस्त थी।

रसनिधि के आते ही लक्ष्मीदेवी उसके निकट आगई।

"क्यो रसनिधि, अभी यहीं हो ?"

चारो ओर दृष्टिपात कर रसनिधि ने कहा—"आज रात्रि को।"

तिरस्कार से लक्ष्मीदेवी ने पूछा—"कल क्या मुहूर्त्त नहीं था ?"

"उन्होंने अस्वीकार कर दिया।"

"किसने—पृथ्वी—"

"हाँ।"

आश्चर्य से लक्ष्मी ने पूछा—"क्यों ?"

रसनिधि ज़रा हँस पड़ा। कहा—"वे कारागृह में बैठे बैठे काम-बाणों से बिद्ध हो गये हैं।"

"हैं !"

रसनिधि बोला—"किसी से कहिएगा मत—आपकी मृणालवती महाराज पर मुग्ध हो गई हैं।"

जैसे अन्धकार से निकलते हुए मनुष्य के नेत्र, प्रकाश मे

आते ही चौंधिया जाते हैं, उसी प्रकार लक्ष्मीदेवी पहले देखती रही, और फिर सब बात समझ कर खिलखिला कर हँस पड़ी। बहुत देर तक वह अपना हँसना न रोक सकी। अन्त मे उसने हँसी से आये हुए अश्रु पोंछकर कहा—"क्या कहते हो?"

"सत्य है। आज वह भी साथ जायगी।"

ज़रा हँसकर लक्ष्मीदेवी बोली—"चलो, बहुत अच्छा हुआ; और तुम भी विलास को ले जा रहे हो?"

रसनिधि चौंक पड़ा। "आपको ज्ञात है?"

"हाँ। यदि तुमने न कहा, तो क्या मुझसे बात छिपी रह सकती है?"

"आप आज्ञा देती हैं?"

"तो क्या मैं मौन हूँ? यहाँ पर सड़ने की अपेक्षा वहाँ रहना क्या बुरा है?"

"केवल यही कि तैलङ्गण का सिंहासन प्राप्त नहीं हो सकेगा।"

"भलेमानस! मुझे भ्रान्त करना चाहता है? तैलङ्गण नहीं, तो अवन्तिका ही सही। इसमें कौन बुराई है।"

रसनिधि—भोज—ने कहा—"देवी, क्षमा कीजिए। चाचाजी के रहते हुए न जाने कब मेरी बारी आयगी, ईश्वर ही जाने। परन्तु मेरे हृदय से तो सम्राज्ञी होकर रहेगी।"

"मुझे इतना ही चाहिए बेटा, जाओ, विजय करो।"

"परन्तु विलास से अभी न कहिएगा, नहीं तो वह अपने पिता या और किसी से कह देगी।"

सत्ताईसवाँ प्रकरण

मृणाल ने मार्ग निकाला

मृणालवती अस्थिर चित्त से विचार करने लगी; परन्तु किसी निश्चय पर न पहुँच सकी। मुञ्ज ने उससे बल-पूर्वक 'हां' कहलवा लिया था; उसने रात्रि को अवन्तिका चलने का वचन भी दे दिया था। मुञ्ज के मोहक नेत्रो से ओझल होते ही उसके विचारो ने पलटा खाया। उसे अपना यह वचन अच्छा न लगा। उसका सम्मान, उसका गौरव, वर्षों का बना हुआ महत्वाकांक्षा का दुर्ग और अभी तक के सत्ता प्राप्त करने के लिए किये गये महाप्रयत्न, ये सभी इस वचन से चूर-चूर हो जाते थे।

वह वृद्धा थी, उसमें चातुरी थी। वह समझ गई कि मुञ्ज नेत्रों के निक्षेप मात्र से ही उसे नचानेवाला उस्ताद है। इसमें तो कोई संशय नहीं था कि यदि वह उसके साथ उसके राज्य में चली जायगी तो अवश्य ही कहीं की न रहेगी।

इस निराधार अवस्था के भयङ्कर अनुभव का दृश्य देख कर उसे रोमाञ्च हो आया। सोचने लगी—वह तपस्विनी है, राज्य विधात्री है, पृथ्वी को भी कम्पित करने वाली महामाया है; फिर क्या एक पल में ही वह इतनी निस्सहाय हो जायगी?

परन्तु मुञ्ज का मोह भी उसे बड़ा भयंकर था। उस के बिना अकेले रहने का उसमें साहस न था; और उसे यह

भी निश्चय था कि उसके बिना दो दिन में यह जो रस-सृष्टि हुई है उसका विनाश हो जायगा। वह मुञ्ज के लिए ही उत्पन्न की गई थी। अब तक उसके लिए ही निर्जीव जीवन के शुष्क अरण्य मे वह भटकती थी। अब उसे हाथ से कैसे जाने दिया जाय? अपनी इच्छा से इस नवीन रस-सृष्टि में कैसे आग लगाई जाय?

मुञ्ज निश्चल था। यदि वह न जायगी, तो भी मुञ्ज तो जायगा ही; और वह सदा के लिए अकेली रह जायगी, मूक और पंगु हो जायगी। फिर जीना भी किस काम का? फिर सत्ता किस काम की? फिर महत्वाकांक्षा सिद्ध हो या नहीं उससे क्या? यह स्थिति उसे निराधार अवस्था से भी अधिक बुरी लगी।

तो सत्ता और महत्वाकांक्षा को ही क्यों न भस्म कर दिया जाय? उसमें सुख और शान्ति कहाँ है? अकेले रहने की अपेक्षा किसी के आधार पर रहना क्या बुरा है?

वह निश्चय पर आने लगी—अवन्तिका जाने ही मे कुल भला है। उसके हृदय की अनिश्चित-स्थिति का अन्त होने लगा।

एक विचार आया और उसका हृदय वज्र के पंजे में जकड़ गया। मुञ्ज जवान था, सुन्दर था, रसिक था; स्त्रियो, को वश में करने की विद्या में प्रवीण था, उसकी बातों से ही ज्ञात होता था कि उसने अनेक हृदयो को रिझाया और विरहाकुल किया होगा; वह सौन्दर्य्य-भोगी था। मृणाल वृद्धा, कुरूपा, नीरस, रस-शास्त्र से अनभिज्ञ और ललित कलाओं

की कट्टर शत्रु थी। अपना और मुञ्ज का पारस्परिक सम्बन्ध कब तक निभेगा—यह विचार उसके लिए बड़ा भयंकर, बड़ा दुःखदायी और हृदय भेदी था। कौन से सूत्र से यह सम्बन्ध जुड़ा था? न सौन्दर्य्य का आकर्षण था; न रस-मय जीवन में सहयोग करने की शक्ति थी, और न बाल्यकाल का श्रद्धा-पूर्ण प्रणय। केवल कच्चे धागे से दोनों बँधे थे। वह मुञ्ज की कीर्ति और सौन्दर्य्य पर मोहित हुई थी; उसके प्रभाव-शील, सत्ताशील स्वभाव पर मुग्ध हुई थी। उसका यह मोह कब तक ठहरेगा? क्यो ठहरेगा? अवन्तिका जाने से उसके प्रभाव की पूर्णाहुति होगी, उसकी सत्ता का नाश होगा। अब भी उसका प्रभाव और उसकी सत्ता पृथ्वीवल्लभ के पैरो के तले रौंधी जा रही थी। फिर—फिर क्या होगा?

एक सन्देह सत्य का स्वरूप पकड़ने लगा; मुञ्ज ने केवल क्षणिक आनन्द के लिए उसे वश मे किया था। इस प्रकार उसने अनेको को किया होगा। कारागृह से निकलते ही इस नवयौवन पूर्ण मोहक संसार मे, उसे आवश्यक और इच्छित रसिक सुन्दरियाँ और क्यों नहीं प्राप्त होगी? फिर क्या किया जाय?

'मान्यखेट चला जायगा, अवन्तिका चली जायगी, पृथ्वीवल्लभ चला जायगा; तब वह कहाँ रहेगी?' इस स्थिति की कल्पना करने की भी उसमें शक्ति न रही।

हाथोपर मस्तक टेक कर वह विचार-माला के मनकों को फेरती रही। सब का सार यही निकला कि मुञ्ज को मान्य-खेट ही में रक्खा जाय—यह निराकरण सब प्रकार ठीक था।

अपनी सत्ता रहेगी, मुञ्ज भी हाथ मे रहेगा, और आनन्द की अवधि का अनुभव करना भी सरल हो जायगा । ज्यो ज्यो वह विचार करती गई, त्यो त्यो यही निराकरण उसे अधिक रुचिकर प्रतीत हुआ। उसने पहले भी यही विचार किया था, मुञ्ज ने केवल हँसकर इसे उड़ा दिया, इससे उसे स्थगित कर दिया गया था।

अब मुञ्ज को किस प्रकार रोका जाय ? क्या वह उस से जाकर मिल आय ? बहुत देर तक उसने विचार किया और पश्चात् वह एक निश्चय पर आई।

एक सेवक के द्वारा कुमार अकलंकचरित को बुला भेजा।

"कुमार !"

"आज्ञा ?"

"बेटा, तेरे शौर्य्य को उज्ज्वल करने वाला एक कार्य्य सौपना है।"

"क्या ?"

"मुझे एक भयानक षड्यन्त्र का पता चला है।"

"कैसा ?"

"मुञ्ज आज रात्रि को छुड़ाकर ले जाया जायगा।"

"हे !" कहकर कुमार एक पैर पीछे हट गया। "कौन कहता है ?"

मृणाल बोली—"तुम्हारे पिता की और तुम्हारी रक्षा करने के लिए मुझे किस बात का पता नहीं रहता ? आज रात्रि को बारह बजे उसे ले जाने के लिए मनुष्य आने वाले हैं।"

"कहाँ से ?

"सुरङ्ग में से। इस छल का अन्त करना है और मुञ्ज को जाने से रोकना है।"

"जो आज्ञा।"

"परन्तु मैंने तुम्हें क्यों बुलाया है, जानते हो ?"

"नहीं।"

"मैं तुम्हारे पिता से बुलाकर कहती; परन्तु वे निर्मल बुद्धि को त्याग कर द्वेषी हो गये हैं—मुञ्ज को मार डालना चाहते हैं। राजाओं के शरीर सर्वदा अस्पर्श्य माने जायँ, यही उत्तम राज-नीति है। तुम इस नीति को उज्ज्वल रक्खोगे, इसीलिए यह काम तुम्हे सौंपती हूँ।"

"जो आज्ञा।"

"मुञ्ज का एक बाल भी बाँका न होने पाय—नहीं तो तेरी अकलंक-कीर्ति कलंकित हो जायगी। समझ लो। जाओ, सावधानी से कार्य्य करना।"

"इसमें अब आपको अधिक समझाने की आवश्यकता न होगी।" कहकर, जैसे स्वस्थ वदन से वह आया था, वैसे ही चला गया।

———

अट्ठाईसवाँ प्रकरण

मध्यरात्रि

कारागार से निकल जाने अथवा मृणाल को ले चलने की उमङ्ग से मुञ्ज के हृदय में तनिक भी अस्वस्थता नहीं आई; सदा की भाँति हाथों का तकिया लगाकर वह अर्ध-निद्रित अवस्था में पड़ा रहा।

उसने धीरे से नेत्र खोले। ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मध्यरात्रि का आरम्भ हो गया हो।

कुछ ही देर मे कारागार के द्वार के आगे किसी के पैरों की आहट सुनाई पडी; वह उस ओर देखने लगा। थोड़ी देर मे आहट शान्त हो गई। उसे आश्चर्य्य हुआ कि अभी तक मृणाल क्यो नहीं आई?

तुरन्त ही सुरङ्ग में से किसी वस्तु के खटखटाने का शब्द सुनाई पड़ा। किसी ने पाँच बार खट खट किया। मुञ्ज ने भी खड़े होकर एड़ी से उतनी ही बार खटखटाया। धीरे से सुरङ्ग के नीचे का पत्थर ऊँचा हो गया और भोज का मस्तक बाहर निकल आया।

उसने धीमे स्वर मे पूछा—"चाचाजी, तैयार हैं न?

"नहीं। अभी मृणालवती नही आई।"

ज्योही ये शब्द निकले, त्योही एकाएक दस-पन्द्रह मनुष्य कारागार मे मशाल लेकर घुस आये।

मुञ्ज उस ओर घूमा और मनुष्यो को देखकर सावधान हो गया।

"जय महाकाल" कह कर वह सुरङ्ग की ओर घूमा और पैर से, भोज को चले जाने का संकेत किया। भोज तुरन्त ही पत्थर को खींच कर चला गया।

परन्तु उसके जाते जाते पत्थर नीचे गिरता हुआ दिखाई पड़ गया और अकलंकचरित उछल कर उस जगह जा पहुँचा। एक नायक पत्थर को रोकने के लिए दौड़ा, उस की अँगुली बीच मे आ गई और पत्थर अपने स्थान पर भली भाँति न बैठ सका। पाँच-छः सैनिक पत्थर को उठाने लगे।

बीस-पच्चीस सैनिक मुञ्ज पर टूट पड़े, और बड़ी कठिनाई से उसको बाँध पाये।

इतने मे पत्थर ऊपर उठ आया।

कुमार ने कहा—"नायक, तुम उस दुष्ट का पीछा करो। जहाँ तक हो, उसे जीवित पकड़ना, अन्यथा समाप्त कर देना।"

वह मुञ्ज की ओर घूम कर बोला—"पापी, यहाँ भी अपनी चातुरी दिखाने लगा?" उसने सैनिको से कहा—"जाओ, मैने जो तलघर बनवाया है, उसमे इसे ले जाओ। यदि यह कहीं निकल गया तो अपना अन्त ही समझ लेना।"

इसके पश्चात् एक मशाल वाले को आगे करके, नंगी तलवार लेकर अकलंकचरित ने सुरङ्ग मे प्रवेश किया।

सैनिको ने पृथ्वीवल्लभ को खूब कस कर बाँधा, और वहाँ से ले जाकर उसे तलघर मे बन्द कर दिया।

अर्ध-निद्रित तैलपराज को एक अस्पष्ट-सा कोलाहल सुनाई

पड़ा। वह उठ कर बिछौने पर बैठ गया। खड़ा हुआ और खिड़की खोली। जिस ओर मुञ्ज को बन्द किया गया था, उस ओर मशाल का प्रकाश दिखाई दिया—सैनिको का स्वर सुन पड़ा। उसके कान खड़े हो गये। उसे भय हुआ कि कहीं मुञ्ज भाग न जाय। वह तलवार लेकर नीचे उतरा। वहाँ पहुचने पर उसे सब समाचार ज्ञात हुआ। जिस तलघर में मुञ्ज रक्खा गया था, वहाँ पहुँचा।

एक ओर से वह आया और दूसरी ओर से मृणालवती आती दीख पड़ी। उसके क्रोध का पार न रहा। पाद-प्रक्षालन के समय किया गया अपमान, और उसके द्वारा की गई मुञ्ज की रक्षा को वह भूल नही गया था। अपनी बहन पर उसे अविश्वास और द्वेष हो आया। गुप्त-चर द्वारा उसे यह भी मालूम हो गया था कि मृणाल कई बार मुञ्ज से मिलने जाती है।

इस समय उसे प्रतीत हुआ कि अज्ञात रीति से मृणाल ही मुञ्ज के भगाने का प्रयत्न कर रही थी, और इसी कारण वह यहां आई थी। तैलप के क्रोध की सीमा न रही—माता के समान बहन के प्रति उसका सम्मान और स्नेह लुप्त होगया।

उसने कठोरता से पूछा—"तुम यहां क्यों आई हो ?"

इस अनोखी रीति से तैलप को सम्बोधन करते देख, उसने भी क्रोध से ऊपर देखा। परन्तु उसके हृदय मे चोर बैठा था; और इस समय तैलप को सामने देख कर तो उस के होश उड़ गये थे।

वह कठिनता से बोली—"मुञ्ज से मिलने के लिए।"

"इस समय नहीं मिल सकतीं। चली जाओ। बन्दियों से मिलने का यह समय नहीं है।"

मृणाल की प्रतिष्ठा चूर्ण हो गई। इस अपमान से उसके नेत्रों में विष व्याप्त हो गया।

उसने मस्तक उठाकर पूछा—"क्या कह रहा है?"

"जो कह रहा हूँ, ठीक कह रहा हूँ।"

मृणाल ने देखा कि इस समय तैलप क्रोध से अज्ञान हो रहा है। उसने सोचा—ऐसे समय उससे वाद-विवाद करना और वह भी सैनिकों के सामने, उचित न होगा। "अच्छा, मुझसे प्रातःकाल मिलना।"

तिरस्कार से तैलप ने कहा—"अच्छा।"

मृणाल वहाँ से चली गई। उसे अपने कर्त्तव्य पर पश्चात्ताप होने लगा। मृणाल के चले जाने पर तैलप द्वार खुलवा कर, मशालची के साथ अन्दर गया। हाथ पैरों से जकड़ा हुआ मुञ्ज भूमि पर पड़ा था।

तिरस्कार और क्रोध से तैलप ने पूछा—"क्यों मुञ्ज, क्या हाल है?"

मुञ्जने हँसकर उत्तर दिया—"बड़ा अच्छा, बड़ा आनन्द।"

"अवन्तिका भाग जाना चाहता था, क्यों?"

"इसमें तुम्हारी आज्ञा की आवश्यकता न थी।"

"तब रह क्यों गया?"

"मुझे किसी ने रोका नहीं, अपनी ही इच्छा से मैं रह गया। रह जाने के लिए ही मुझे ऐसा मार्ग ग्रहण करना पड़ा।"

तैलप समझ न सका। उसने क्रोध से कहा—"अच्छा, पापी! अब तेरा घट भर गया है। अब तुझे हाथी के पैरो से कुचलवाता हूँ। देख तो।"

मुञ्ज के मुख पर तिरस्कार-पूर्ण हास्य छा गया। बोला—"इस धमकी को सुन-सुन कर तो मैं अकुला गया हूँ।"

तैलप ने विचारा कि सैनिको के समक्ष अधिक वार्त्तालाप करना, प्रतिष्ठा की बात नही है। इसलिए उसने संक्षेप मे ही कहा—

"अब अधिक समय तक आकुलता न रहेगी। सैनिको! इस पापी की भली भांति देख-भाल करना। अन्यथा तुम्हारी मौत ही आ जायगी।" इतना कह कर वह जाने के लिए लौटा।

मुञ्ज का हास्य-पूर्ण स्वर सुन पड़ा—"वध भले ही करा देना; पर मेरे मस्तक को शोभा दे, वही करना।"

उन्नीसवाँ प्रकरण
षड्यन्त्रकारियों की खोज

अपराधी को पकड़ने के लिए व्याकुल हुआ कुमार सुरङ्ग में उन्मत्त होकर दौड़ा। अपराधी को नष्ट कर देने की लालसा से उसकी नस-नस काँप रही थी।

थोड़ी देर में पवन बहने लगा। मशाल की ज्वाला नाच उठी, सुरंग का द्वार आ गया। सुरंग का मुख-द्वार महासामंत के उद्यान में निकलता था। उससे निकलते हुए कुमार को कोई भी दृष्टि नहीं पड़ा।

कुमार ने देखा कि मशाल के कारण वह तो सब को दृष्टि पड़ सकता है; पर प्रकाश की चकाचौंध से दूसरा आदमी उसे नहीं दिखलाई पड़ता; इसलिए उसने मशाल को बुझवा दिया।

इतने मे सुरंग से होकर आठ-दस सैनिक और आ गये, उसने उनको भिन्न-भिन्न दिशाओ में खोज करने के लिए भेजा। स्वयं महासामंत के महल की ओर गया।

चबूतरे पर लक्ष्मीदेवी खड़ी थी। कुमार वहाँ खड़ा रह गया।

"देवी; इस ओर से किसी को भागते हुए देखा है?"

अस्पष्ट तिरस्कार से लक्ष्मीदेवी ने कहा—"कौन, कुमार? तुम यहां कैसे आये?"

"किसी को जाते हुए देखा है ? कुछ दुष्टों ने आज बड़ा अनर्थ करना चाहा था। वे अभी-अभी निकल कर भागे हैं।"

लक्ष्मीदेवी ने निर्दोष भाव से प्रश्न किया "कौन ? जो अभी तुम्हारे निकट खड़े थे।"

"नहीं, वे नहीं, दूसरे थे।"

एक सैनिक ने पुकारा—"महाराज, महाराज ! यह कोई जा रहा है।"

अकलंकचरित सिंह की तरह तड़प कर दौड़ा। अंधकार मे कुछ दूर पर किसी को महादेव के मन्दिर की ओर जाते हुए देखा। उसके कन्धे पर कुछ रखा हुआ प्रतीत होता था।

उसके पैरों से कोई कुचल गया। एक चीख सुनाई पड़ी। अकलंकचरित रुका और देखने लगा। उसे स्वर परिचित-सा मालूम हुआ। उसने चौंक कर पूछा—"कौन, नरसिंह ?"

पृथ्वी पर पड़े सैनिक ने रुँधे स्वर में कहा—"हाँ। महाराज ! भाग गया, वह विलास को लेकर भाग गया—उस मन्दिर मे—आह—मुझे मार डाला—आह !"

सैनिक के अन्तिम शब्द सुनने के लिए कुमार खड़ा नहीं रहा। उसके कुछ ही शब्दो से वह बहुत कुछ समझ गया था। विलास को ले जाने वाला और मुञ्ज को छुड़ाने वाला रसनिधि ही होना चाहिए। उसे यह भी ज्ञात था कि महादेव के मन्दिर से होकर नगर के बाहर जाने का एक गुप्त

मार्ग भी है। उसे विश्वास हो गया कि उसी मार्ग से रसनिधि भागने की चेष्टा कर रहा है।

अकलंक के हाथ-पैरों में हज़ार गुना बल आ गया। कुछ ही क्षण में वह मन्दिर में जा पहुँचा। चारों ओर दृष्टि डाली; पर वहाँ कोई न था। सुरंग के द्वार का उसे पता नहीं था; परन्तु ध्यान-पूर्वक देखने से उसे नन्दी टेढ़ा दीख पड़ा। उसने जोर से उसे हटाया। नन्दी को कोई इसी प्रकार खड़ा कर गया था। उसके अलग होते ही सुरंग का द्वार दीख पड़ा। द्वार मे घुसते ही नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ दीखी पड़ीं।

बिना आगा-पीछा सोचे वह तुरन्त सुरंग में घुस पड़ा। विलास को ले जाने वाले रसनिधि से उसे द्वेष तो पहले ही था, अब उसने राज-द्रोह का अपराध भी किया और उसकी स्त्री को भगाये लिये जा रहा था। तैलप की क्रूरता और मृणाल की कठोरता—दोनो लक्षणों वाला रक्त, और शुष्क नियमों द्वारा दी गई शिक्षा; इन दो के मिश्रण से बना हुआ उसका भयंकर स्वभाव इस समय किसी ओर नहीं देख रहा था। उसे केवल रसनिधि के रक्त से अपने खड्ग की पिपासा शान्त करनी थी।

अन्धकार में भटकता, पराजित होता, और ठोकरें खाता हुआ वह शीघ्रता से आगे बढ़ा। चारों ओर के भीषण अन्धकार में केवल हाथ-पैरो की सहायता से मार्ग मिल रहा था।

तनिक आगे बढ़ने पर उसे एक स्वर सुनाई पड़ा—

कोई धीरे-धीरे टकराता हुआ आगे बढ़ रहा था । कुमार के हर्ष का पार न रहा । वह उत्साह-पूर्वक आगे बढ़ा ।

एकाएक उसका शरीर दीवार से टकराया । मार्ग संकीर्ण हो गया । इतना संकीर्ण कि एक ही मनुष्य सीधा होकर जा सकता था । पीछे लौटना कठिन हो गया; परन्तु यह प्रतीत हुआ कि आगे जाने वाले मनुष्य की कठिनता और भी बढ़ जायगी । कुमार नंगी तलवार को सीधी करके आगे बढ़ा ।

इस संकीर्ण मार्ग मे रसनिधि का कार्य कठिन हो गया । विलास मूर्च्छित हो गई थी; और इस मार्ग मे उसे कन्धे पर भी नही लिया जा सकता था, तिस पर भी वह उसे कभी उठाकर, कभी घसीट कर, और कभी मूर्च्छित होने पर भी, आगे धकेल कर बड़ी कठिनता से आगे बढ़ रहा था । थोड़ी देर मे वह आगे बढ़ने से रुक गया । पीछे से किसी के आने का पद-रव उसे बिल्कुल निकट सुनाई पड़ने लगा । उसे प्रतीत हुआ कि इसी प्रकार चलने से पीछे वाला मनुष्य उसे सरलता से अपना आखेट बना लेगा ।

उसने मूर्च्छित विलास को दीवार की सहायता से भूमि पर बैठा दिया, फिर पीछे घूम कर दृढ़ता से हाथ मे खड्ग को लिये हुए उसने पूछा—"कौन है ?"

कुमार बहुत पास आ गया था । वह इस प्रश्न को सुन कर चौंका, दूसरे ही क्षण सावधान हुआ, और आगे आकर बोला—"तेरा काल !"

"तो मै भी उपस्थित हूँ ।" कह कर रसनिधि आगे बढ़ा ।

एक क्षण मे दो तलवारें लड़ गईं। उनसे अग्नि-कण निकलने लगे।

परन्तु विनाश के लिए चली हुई दोनों तलवारें दीवार से लग गईं और उनके खण्ड-खण्ड हो गये।

दोनो कुशल योद्धा थे। दोनो ने तलवारों को फेक दिया और एक-दूसरे पर टूट पड़े।

यह प्राणहारी मल्ल-युद्ध था। जहाँ एक मनुष्य कठिनाई से सीधा चल सकता था, वहाँ ये दोनो ताण्डव-नृत्य करने लगे। दीवार से मस्तक भिड़ते, कुँहनी और घुटने छिल जाते, हड्डियो में पत्थरों की चोटें लगतीं; पर तो भी ये दोनों कट्टर शत्रु इस भयंकर अन्धकार में अद्भुत युद्ध कर रहे थे।

दोनों ने एक-दूसरे के प्राण लेने का निश्चय किया था—दोनों का विश्वास था कि विजय के अतिरिक्त इस संसार मे रहने का कोई अन्य साधन नही है।

रसनिधि का अंग मम्फोला था। अकलंक का लम्बा और प्रशस्त। परन्तु रसनिधि का खेल सच्चे खिलाड़ी का का था। यद्यपि पहले वह कुमार के उत्साह-पूर्ण युद्ध से पीछे हटा, परन्तु धीरे-धीरे उसकी कला ने उसकी सहायता की। बहुत देर तक दोनो लड़ते रहे, कोई पराजित न हुआ। कुमार जोर जोर से श्वास ले रहा था, किन्तु कुशल रसनिधि मार्ग देखकर केवल अपनी रक्षा ही कर रहा था।

अकलङ्क समझ गया। श्वास भर आने के पहले ही उसने शत्रु को यमलोक पहुँचाने के लिए बड़ा प्रयत्न किया,

परन्तु कुछ न हुआ। मालवीय योद्धा खिलाड़ी था; थोडी देर मे उसने कुमार को कोने मे खदेड़ा और दूसरे ही क्षण उसकी छाती पर चढ़ बैठा।

रसनिधि ने एक श्वास लिया और कहा—"बोल पापी! किसका काल आया?"

कुमार कुछ न बोला; उसे मृत्यु से यह पराजय अधिक कष्टदायी ज्ञात हो रही थी।

"ऐसी इच्छा होती है कि सात पीढ़ियों का बदला इस समय ले लूँ।"

"ले ले, अब मुझे जीने या मरने की चिन्ता नही है।"

"नहीं, इस समय नहीं लूँगा। इस समय नही मारूँगा। इस प्रकार मार डालने से मेरी कीर्ति पर कलङ्क आ जायगा। लोग समझ ही नहीं सकेंगे कि तेरी मृत्यु किस प्रकार हुई है।"

अकलङ्क ने तिरस्कार से कहा—"समाप्त कर दे, यह है मेरा गला। घोंट दे। तुझ जैसे नपुंसक को यही शोभा देगा।"

"अकलङ्क! अभी अवन्तिका के परमार को नपुंसक कहने वाला पृथ्वी पर कोई उत्पन्न नहीं हुआ। अपना अभिमान त्याग दे। यदि तू मान्यखेट का युवराज है, तो मै अवन्तिका का युवराज हूँ।"

"कौन, भोज?"

"हाँ, भोज। मैं तुझे मारूँगा, तो युद्ध ही मे मारूँगा, इस प्रकार एकान्त अन्धकार मे नहीं। जा, मैं तुझे मुक्त करता हूँ; परन्तु एक शर्त है।"

"कौन सी ?"

"किसी भी प्रकार की गड़बड़ी किये बिना जिस मार्ग से आया है, उसी से लौट जाना होगा।"

"इस शर्त की क्या आवश्यकता है ? दूसरा मार्ग ही कौन सा है ? बाहर के मार्ग पर तो तुम्हारे साथी खड़े होंगे।"

"और यदि पीछा किया ?"

कुमार एक क्षण के लिए मौन हो गया। उसने निश्चय कर लिया कि पुनः युद्ध करना निरर्थक है।

"नहीं करूँगा।"

"वचन दे रहे हो ?"

"अवश्य।"

"अच्छा।" कह कर भोज ने उसे छोड़ दिया।

धूळ झाड़ता हुआ अकलंक उठ खड़ा हुआ।

"जाओ!"

"जा रहा हूँ।" कहकर, अकलङ्क आगे बढ़ा; किन्तु ऐसा प्रतीत हुआ कि वह नीचे झुक कर किसी चीज़ को खोज रहा है।

भोज ने हँसकर पूछा—"क्या अपनी विजय-स्मृति मे तलवार के टुकड़े लिये जाते हो ?"

कुमार ने उत्तर नहीं दिया। तनिक आगे बढ़ने पर फिर यह प्रतीत हुआ कि वह किसी वस्तु से टकराकर गिर पड़ा है। कुछ देर तक वह पृथ्वी पर पड़ा रहा।

भोज को सन्देह हुआ—"क्यों, उठ गये, या मैं आऊँ ?"

अकलङ्क ने उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर में वह उठा,

और दौड़ता हुआ चला गया।

उसके दौड़ने का पद-रव क्षीण हो गया, तो भोज नीची दृष्टि कर के विलास को खोजने लगा। उसे ज्ञात हुआ कि जहाँ विलास को सुलाया था, उस स्थान से वह और कुमार युद्ध करते-करते बहुत आगे बढ़ गये थे। उसने पीछे लौट कर हाथ से टटोलते हुए खोजना आरम्भ किया। युद्ध की थकान से उसका मस्तक घूम रहा था और इस कारण यह खोज दुस्तर-सी हो गई। थोड़ी देर में विलास के पैर उसके हाथ मे आ गये। उसने तुरन्त उसकी कमर में हाथ डालकर उसे उठा लिया और तेजी से चलने लगा।

"विलास! प्रिये! आखिर उस राक्षस के पञ्जे से छूट गई।"

तीसवाँ प्रकरण

विलास की दशा

भोज पच्चीस कदम आगे बढ़ा कि उसका मस्तक स्थिर हो गया, और उसे चेतना-सी हो आई।

वह चौंक पड़ा। विलास उसे हलकी मालूम हुई। उसने होंठ चबाकर स्वस्थ होने के लिए प्रयत्न किया।

उसका हृदय धकधक करने लगा। उसका दाहिना हाथ विलास की पीठ के नीचे था। उसमें से पानी सा निकलता हुआ प्रतीत हुआ। पानी—रक्त—इतना अधिक! भोज का हृदय थम गया, पैर काँपने लगे, वह खड़ा हो गया।

उसने बड़ी कठिनता से विलास को सीधा किया। रक्त निकलने वाला क्षत स्थान देखने के लिए उसने हाथ बढ़ाया और जोर से चीख कर सारी सुरंग को गुँजा दिया।

विलास के कन्धे के ऊपर का भाग था ही नहीं।

भोज का हाथ बिल्कुल रुधिर से सन गया। जहाँ विलास का मस्तक होना चाहिए था, वहाँ से गरम गरम रुधिर बह रहा था।

भोज को ज्ञात हुआ—उसके हाथ में केवल विलास का धड़ ही था।

उसका रोम-रोम काँप उठा। उसके हाथ में से धड़

पृथ्वी पर गिर पड़ा।

वह दिग्मूढ़ होकर खड़ा रह गया। उसके हृदय में एक अनिर्वचनीय शोक छा गया। वह रुधिर से सना हुआ हाथ मस्तक पर रखकर रो पड़ा।

इसी समय सामने से किसी के दौड़ कर आने का पद-रव सुन पड़ा। और मशाल का प्रकाश भी निकट आता हुआ प्रतीत हुआ। थोड़ी देर में सामने से मशाल लेकर धनञ्जय आता हुआ दीख पड़ा। उसके पीछे और भी कुछ कवि थे। भोज के आने में बिलम्ब हो जाने के कारण उसे खोजने के लिए वे आ रहे थे।

"महाराज ! महाराज !"

धनञ्जय निकट आया, और भोज को रोते देख, ठहर गया; तनिक आगे बढ़ा, और चिल्ला उठा—"अरे बापरे !" उसके हाथ से मशाल गिर पडी।

उसके सम्मुख रुधिर से सना हुआ कोई खड़ा हुआ था—एक शव से भूमि पर रुधिर की धारा वह रही थी।

धनञ्जय साहसी था। जहाँ मानुषी साहस की आवश्य-कता थी, वहाँ उसे प्रतीत हुआ कि साक्षात् भैरव-मूर्ति उसके समक्ष खडी है।

परन्तु भोज ने उसे पहचान लिया—"धनञ्जय ! धन-ञ्जय ! भाई—"

धनञ्जय को चेत और साहस आते ही उसने मशाल ऊँची की।

"कौन, युवराज ? क्या कहते हो ?"

"धनञ्जय ! यह देखा ?" किसी प्रकार भोज ने ये शब्द मुख से निकाले और विलास के धड़ की ओर संकेत किया।

"क्या है ?"

"विलास का धड़।"

"परन्तु महाराज कहाँ हैं ?"

"महाराज कारागृह मे हैं। जैसे ही मैं तलगृह मे पहुँचा कि अकलंकचरित और उसके सैनिक द्वार खोल कर टूट पड़े। महाराज पकड़े गये। मैं पत्थर लगा कर लौटा। अकलंक ने मेरा पीछा किया। वह दम लेने के लिए रुका—"

"फिर ?"

"मैं तुरन्त ही लक्ष्मीदेवी से विलास को लेकर भाग पड़ा। यह मूर्च्छित हो गई थी। इसे उठाकर मैंने मन्दिर की सुरंग मे प्रवेश किया।

अकलंक मेरे पीछे ही लगा था—इस सुरंग मे हमारा द्वन्द्व युद्ध हुआ। मैं जीता। मैंने उसे मुक्त कर दिया। उसने धोखा न देने का वचन दिया। पापी चला तो गया; परन्तु जाते-जाते विलास का मस्तक काट कर ले गया।"

"हैं !" धनञ्जय और पीछे खड़े हुए अन्य कविगण चकित हो गये।

"अब मेरी समझ में आया। जब वह दुष्ट विलास के अचेत शरीर से टकराया, तभी उसने ऐसा किया। चलो, देखना चाहिए।" कह कर उसने मशाल उठाई और पीछे लौटा।

वे थोड़े ही आगे बढ़े कि उनको युद्ध का स्थान मिल गया; परन्तु वहाँ पर दो तलवारों मे से एक ही तलवार के मूठ का भाग और दो तलवारो के अग्रभाग पड़े थे। एक कोने में—जहाँ विलास को सुलाया था, वहाँ रुधिर के डबरे भर गये थे।

सब मौन धारण किये हुए लौटे। विलास का धड़ उठाया और तुरन्त ही सुरंग से बाहर आये।

बाहर आकर सब घोड़ो पर बैठे और शीघ्रता से बढ़ते हुए गोदावरी के समीप आ पहुँचे।

गोदावरी के तीर पर चिता तैयार करके भोज ने विलास के धड़ का अग्नि-संस्कार किया। भोज के रोम-रोम मे अग्नि-सी व्याप्त हो गई। जैसे ही अग्नि-ज्वालाओं ने विलास के शरीर का स्पर्श किया, वैसे ही वह मन ही मन मे बोल उठा—"स्मरण रहे। मै इसके रुधिर के एक-एक बिन्दु का हिसाब लूँगा!"

दूसरे ही क्षण उसे विलास का स्मरण हो आया। उस निर्दोष काव्य रसिका का म्लान, परन्तु मनोहर वदन दृष्टि के सम्मुख आ खड़ा हुआ। उसका हृदय भर आया और फूट-फूट कर रुदन करने लगा।

धनञ्जय ने पूछा—"युवराज, अब क्या करना चाहिये?"

"क्या करना चाहिए? अवन्तिका चलना चाहिए।"

"परन्तु महाराज का क्या होगा?"

दुखितावस्था में भोज ने सिर हिलाया—"कुछ नहीं। जो रुद्रादित्य का वचन था, वह सत्य हुआ। मुञ्ज एक ही

बार गोदावरी लाघेंगे, दूसरी बार नहीं। उनकी मृत्यु मान्यखेट में ही होगी।"

"वहाँ का समाचार तो मालूम करना चाहिए। एक काम किया जाय—गोदावरी लाँघकर गुप्त-वेष मे दो-चार दिन रह कर कुछ पता लगाएँ।"

विलास की अस्थियो का गोदावरी मे विसर्जन करके, गोदावरी लाँघकर, वे निकट के ग्राम की ओर चले।

यह ग्राम अनेक मार्गों के मुहाने पर था। वहाँ पहुँच कर वे लोग अपनी थकान मिटा भी न पाये थे कि गोदावरी के उस पार दो-तीन सौ सैनिको की एक टुकड़ी आती दिखलाई पड़ी।

भोज, और उसके मालवीय योद्धाओ ने उसे देखा, और उनके होश उड़ गये। समझा कि तैलप ने उनको पकड़ने के लिए इस टुकड़ी को भेजा है। परन्तु जैसे ही वह नदी के तट पर पहुँचे कि धनञ्जय ने आगे आते हुए योद्धा को पहचान लिया। "महासामन्त!"

भोज ने कहा—"लक्ष्मीदेवी!"

सब मालवीय देखते रहे। सम्मुख आते हुए समूह के आगे दो घोड़ो पर लक्ष्मीदेवी और महासामन्त थे।

परन्तु सब का दृश्य विकराल था। महासामन्त के एक हाथ मे परशु था, और दूसरे में एक महान खड्ग। उनके मुख पर रक्त से सने हुए घाव थे। उनका घोड़ा भी रुधिर से लथपथ हो रहा था।

लक्ष्मीदेवी का स्वरूप चण्डिका के समान भयङ्कर था।

उनके एक हाथ में रक्त से लाल हुई तलवार थी। शरीर पर धूल जमी हुई थी और रुधिर बह रहा था। घोड़े की जीन से एक कटा हुआ मस्तक बँधा हुआ था। जैसा इन दोनो का दृश्य था, वैसा ही उनके सैनिकों का भी। प्रत्येक के हाथ मे खुले शस्त्र थे, प्रत्येक का हृदय रक्त से रँगा हुआ था। प्रत्येक की मुख-मुद्रा भी भयावनी थी।

भोज बोला—"धनञ्जय! ये हमको पकड़ने के लिए नही आ रहे हैं; प्रतीत होता है—ये युद्ध से लौट कर आ रहे हैं।"

इतने मे महासामन्त ने "जय स्यूनेश्वर !" कहकर घोड़े को नदी मे बढ़ाया। उनके पीछे लक्ष्मी देवी ने और सब अनुचरो ने भी यही किया।

इस ओर भोज और उसके अश्वारोही सोच रहे थे कि यहाँ ठहरा जाय, या घोड़ों पर बैठ कर आगे बढ़ा जाय। यह सोचते हुए वे नदी की ओर देख रहे थे कि महासामन्त नदी को पार करके आ पहुँचे। उन्होने भोज को पहचान लिया। बोले—"रसनिधि !"

"महासामन्त ! आप यहाँ कैसे ?" कहकर उसने अपना घोड़ा महासामन्त के घोड़े के निकट लगा लिया।

"मैं स्यून-देश जा रहा हूँ।"

इसी समय लक्ष्मीदेवी भी नदी को पार करके वहाँ आ पहुँची।

"भोजराज ! अब ये महासामन्त नहीं; स्यून देश के महाराजाधिराज भोल्लमराज हैं—"

लक्ष्मीदेवी के नेत्र लाल और फटे हुए थे। होठ दबे हुए, अंग-अंग में उन्माद और क्रोध व्याप्त हो रहा था। रसनिधि यह भयङ्कर मूर्ति देखता रहा, और उसकी दृष्टि लक्ष्मीदेवी के घोड़े की जीन पर लटके हुए मस्तक पर पड़ी।

विकराल लक्ष्मीदेवी ने भयङ्कर हास्य कर के चोटी पकड़ कर उस मस्तक को ऊँचा किया।

"और यह स्यूनाधिप का विजय-ध्वज है।" यह कह कर लक्ष्मीदेवी अट्टहास करने लगी—जैसे स्मशान का कोई प्रेत हँस रहा हो।

भोज ने वह मस्तक देखा—पहचाना। उस पर विलास के मुख की छाप थी।

उसका रोम-रोम खड़ा हो गया। वह काँप उठा। उसके नेत्रों के सम्मुख अन्धकार छा गया और वह अचेत होकर घोड़े पर से गिर पड़ा।

इकतीसवाँ प्रकरण

लक्ष्मीदेवी ने तैलंगण क्यों छोड़ा ?

अकलंकचरित के गर्विष्ठ स्वभाव पर बड़ा गहरा आघात हुआ। इस समय वह पराजय से निराश हो रहा था, तो भी उसके हृदय मे हलाहल व्याप्त हो गया।

इतने मे उसने ठोकर खाई और गिरने पर टूटी हुई तलवार का एक अर्ध-भाग हाथ लगा। उसे लेकर वह आगे बढ़ा। दो पैर आगे जाकर उसने फिर ठोकर खाई और अचेत विलास के शरीर पर वह गिर पड़ा।

पराजय का अपमान वह सह सकता था; परन्तु भोज का विलास को ले जाना वह कभी नही सह सकता था। बदला लेने की भीषण आकांक्षा से उसके हृदय में एक घातक विचार उत्पन्न हुआ। वह उसे व्यवहार में ले आया। तलवार के अर्द्ध-भाग से उसने विलास का मस्तक काटकर हाथ में ले लिया।

यह घोर कर्म करके वह आगे बढ़ा। उसके हृदय का भार हलका होगया था—एक ही आघात से पापी भोज और कृतघ्न विलास को वह दण्ड दे सका था।

कुछ आगे जाने पर, उसकी खोज के लिए मशाल लेकर निकले हुए सैनिक मिले। विलास का सिर हाथ में लिये रुधिर से सने हुए कुमार को देखकर वे चौक कर खड़े

होगये। उनके कठोर हृदय भी कम्पित होगये।

कुमार ने कहा—"लौट चलो।"

आज्ञा मान कर सैनिक पीछे लौटे और धीरे-धीरे मन्दिर में आ पहुँचे। वहाँ तैलप और भील्लम कुछ योद्धाओं के साथ कुमार की प्रतीक्षा कर रहे थे। कुमार को रुधिर से सना हुआ मस्तक लाते देख, घबराकर सब पीछे हट गये।

तैलप ने भँवें चढ़ाकर पूछा—"यह क्या है?"

"यह—" कहकर अकलंक ने मस्तक ऊँचा किया। और कहा—"जो पापिनी मुझे त्याग कर भोज के साथ जा रही थी, उसका यह मस्तक है।"

नेत्र विस्फारित करके भील्लम ने पूछा—"विलास—?"

क्रूर-हृदय कुमार ने क्रूरता-पूर्ण हास्य करते हुए कहा—"हाँ। तैलङ्गण की भावी सम्राज्ञी। अपने चाचा को भगा ले जाने में भोज सफल न हुआ, तो इसको लेकर जा रहा था। मैंने उसे पकड़ने का प्रयत्न किया; परन्तु उलटे उसने मुझे पकड़ कर पराजित किया, और छोड़ दिया। लौटते समय मैं इसका मस्तक काट कर ले आया।"

मृणालवती की आवाज़ सुनाई दी— "किसका मस्तक?" जक्कलादेवी, लक्ष्मी और कुछ सैनिकों के साथ वह यहाँ आई थी।

"विलास का।" कहकर, मशाल के प्रकाश में उसने उसे ऊँचा करके दिखाया। विलास का मुख भयानक निश्चलता से सब के सामने देखता रहा।

क्षण भर के लिए भीषण शान्ति छागई।

स्यूनराज होंठ से होठ दबाकर अन्धकार-पूर्ण हृदय से मूढ़ की भांति नेत्र फाड़ कर देख रहा था। उसकी विचार-शक्ति नष्ट होगई थी।

मशालो के प्रकाश-पूर्ण वर्तुल में कोई कूदा और अकलंक के हाथ मे से विलास का मस्तक छीन ले गया।

लक्ष्मीदेवी ने गर्जन किया—"मेरी विलास का सिर!"

उसने मस्तक को ऊपर उठाया और धीरे से विलास का निर्दोष मुख, सुकोमल मुख-रेखा, और सुन्दर नयनों की निर्जीव निश्चलता देखी। सब उसे देखते रहे—बीच मे बोलने का किसी को साहस न हुआ।

लक्ष्मीदेवी की मूर्ति इस समय महिषासुर-मर्दिनी की भांति प्रतीत हो रही थी। खुले हुए नेत्रो से अग्नि-वर्षा होने लगी। मुख पर विश्व-संहारक कोप का दुस्सह प्रताप दीख पड़ने लगा। शव के समान श्वेत बनी हुई वह केवल शरीर से प्रकटित क्रोध की ज्वाला से सब को जला रही थी।

तुरन्त ही उसने कुमार से पूछा—"मेरी पुत्री की तू ने हत्या की है?"

कुमार शीघ्र ही उत्तर न दे सका।

आती हुई आँधी को रोकने के लिए तैलप बोला—"अच्छा, अब चलो।"

लक्ष्मीदेवी बीच में ही बोल उठी—"भील्लमराज! देखा? अकलंकचरित के पद की रज अपने मस्तक पर चढ़ाओ

कि जिसने तुम्हारी एक मात्र कन्या की यह दशा की !" वह नेत्र फाड़ कर अपने पति के सामने देखने लगी। बेचारा वह योद्धा दिग्मूढ़ होकर देख रहा था। वह आवेश में भरी हुई उसकी ओर घूमी—"धिक्कार है तुम जैसे नपुंसक को ! तुम्हारे हाथ क्या टूट गये है ? अपने आयुध कहाँ बेच आये ? इस पिशाच ने तुम्हारी एक मात्र कन्या का शिरच्छेद किया, और तुम मे इसका शिरच्छेद करने का बल नही है ? क्या देख रहे हो ? देखते क्या हो ?" उसके स्वर मे, अनिवार्य तिरस्कार और क्रोध सन्निविष्ट था।

भोल्लम के मस्तक पर बल पड़ गये; परन्तु वह कुछ बोल न सका, केवल लक्ष्मीदेवी के मुख की ओर देखता रहा।

सदा की टेव से मृणालवती ने सत्तावाही स्वर मे कहा—"लक्ष्मी ! क्या बक रही है ? तनिक चेत मे आ।"

"चेत ! चेत !" लक्ष्मीदेवी के उन्माद-पूर्ण आवेश से मृणाल भी स्तब्ध हो गई। "मेरी पुत्री ने क्या अपराध किया था ? इस समय मुञ्ज के साथ मालवे को भाग जाने के लिये तो तुम तैयार थी ! तुम्हारा मस्तक धड़ पर है; कारण, कि तुम तैलपराज की बहन हो; और इसका मस्तक धड़ पर नहीं है; कारण, कि यह स्यून-देश के दरिद्र और कायर राजा की कुमारी है, क्यों ?"

लक्ष्मीदेवी की इस बात से सब चौंक पड़े, जैसे बिजली गिर पड़ी हो। सब एक-दूसरे के मुख की ओर देखने लगे। तैलप सब से पहले स्वस्थ हो गया। उसने विचार किया कि सैनिको के देखते यह फजीहत अच्छी नहीं है। उसने

भील्लम से कहा—"महासामन्त, लक्ष्मीदेवी को ले जाओ।"

"कहाँ ?" एक पैर आगे बढ़कर, उन्मादिनी की भाँति लक्ष्मीदेवी तैलप के सामने आँखें फाड़कर उच्चस्वर मे बोली—"भील्लमराज ! ले चलो मुझे—हाँ, अपने स्यून देश। अब इस स्थान का अन्न-जल विष के समान है। परन्तु तुम क्या करोगे ? तुम तो सेवक हो, हाथो में चूड़ियाँ पहने हो, नपुंसको की मण्डली मे बैठे हो। तुम क्या ले जा सकोगे ? मैं स्वयं जाऊँगी। मै चालुक्य महाराजाओं की कुमारी हूँ। सहस्र-सहस्र वीराङ्गनाओ का उन्मत्त रक्त मेरी धमनियों में भरा है। मै अकेली पर्याप्त हूँ उसका रक्त-पान करने के लिए, जिसने मेरी कन्या का वध किया, मेरे देश को डुबाया।" वह अकलंक की ओर घूमी—"नरपिशाच ! चाण्डाल ! मै तेरा रक्त-पान कर के छोड़ूँगी।"

भील्लम के नेत्रों मे भयंकर तेज आ गया, साथ ही बोलने की शक्ति भी। "देवी ! अभी तो चलो।"

लक्ष्मी ने सत्ता-पूर्ण स्वर से कहा—"हाँ, चलो, स्यून-देश। इस पाप-भूमि पर क्षण भर भी नहीं रहना चाहिए।"

ज़रा आगे बढ़ कर तैलप बोला—"भील्लम ! इसको ले जाते हो, या नहीं ?"

धीरे से भील्लम आगे बढ़ा, और लक्ष्मीदेवी तथा तैलप के बीच खड़े होकर उसने कहा—"सावधान !" उसका प्रचण्ड शरीर स्वस्थ और शान्त था, स्वर भर्राया हुआ, परन्तु भयङ्कर था। "देवी, सत्य कह रही हो। चलो अपने देश।" कह कर उसने लक्ष्मीदेवी का हाथ पकड़ा और उसे खींच कर

आगे बढ़ने लगा ।

इतने मे उसकी दृष्टि भूमि पर पड़े हुए शंख पर पड़ी । उसने उसे उठा लिया और अपने सैनिकों को बुलाने का घोष किया ।

तैलप इस घोष का अर्थ समझ गया । क्रोध मे भरा हुआ आगे बढ़ कर बोला—"भीलम ! यह क्या कर रहे हो ? क्या तुम्हे भी उन्माद होगया ?"

भीलम तैलप से एक हाथ ऊँचा था। उसने अपना दृढ़ पंजा तैलप के सिर पर रख दिया ।

"क्या ?"

तैलप दो कदम पीछे हट गया और होठ चबा कर बोला—"अभी मान्यखेट नही छोड़ा जा सकता ।"

"देखता हूँ कौन रोकता है ?" कह कर भीलम, शंख का घोष सुन कर आये हुए सैनिको की ओर घूमा । "घोड़े लाओ, हमे स्यून-देश जाना है ।" कह कर वह लक्ष्मीदेवी को लेकर चल दिया । बीच मे आने का किसी को साहस न हुआ । कारण, भीलम का बाहुबल जगत्-प्रसिद्ध था । थोड़ी देर तक सब चित्रवत् खड़े रह गये ।

तैलप ने कहा—"अकलङ्क ! राजदुर्ग और नगर के द्वार बन्द करा दो ।"

उत्तर में स्यूनराज का शंख दूर से सुन पड़ा और महल में योद्धाओं की भगदड़ मच गई ।

देखते-देखते स्यूनराज के सब योद्धा सुसज्जित हो गये । लक्ष्मीदेवी की भयङ्कर मुख-मुद्रा, और विलास के मस्तक

के विजय-ध्वज से प्रत्येक के रोम-रोम में उन्माद व्याप्त हो गया। तुरन्त ही वे घोड़े पर चढ़े और शंख का विजयी घोष करते हुए आगे बढ़े। अकलंक ने अपने अनेक योद्धाओं को उनके रोकने के लिये भेजा।

स्थूनराज उन्मत्त होकर अपने योद्धाओं-सहित आगे बढ़े और मान्यखेट के नगर-द्वार के आगे घमासान युद्ध मच गया।

भील्लमराज और लक्ष्मी देवी ने प्रलय मचा दिया। उनके सैनिकों ने शौर्य्य की सीमा पर पहुँच कर शोणित की सरिता बहा दी। उस सरिता को पार करके वह छोटी सेना मान्यखेट से आगे बढी, और गोदावरी लाँघ कर भोज के साथ जा मिली।

बत्तीसवाँ प्रकरण

भिक्षा

इस समय मृणालवती क्षुद्र से क्षुद्र प्राणी की अधमता और अप्रतिष्ठा का अनुभव कर रही थी। उसकी आकांक्षा पूर्ण न हुई, इतना ही नहीं; मुञ्ज सदा के लिए उसके हाथ से निकल गया। और सम्भव है, उसे अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़े। इसके अतिरिक्त सारे संसार में उसकी निन्दा हुई, और वैराग्य के आडम्बर से जो सम्मान, सत्ता और शान्ति प्राप्त हुई थी, उन सबका नाश हो गया। अन्त मे लक्ष्मी देवी ने एक ही वाक्य से सारे जीवन का बदला ले लिया, और वह इस अधोगति को प्राप्त हो गई कि तैलङ्गण के कौए और कुत्ते भी उसकी ओर दृष्टि उठाकर नहीं देखेंगे। सुख गया, प्रेम गया, वैराग्य गया, मान गया, सत्ता गई; तो भी वसुन्धरा ने अपने हृदय मे स्थान नही दिया, यम ने प्राण नहीं लिये।

वह अपने विश्रान्ति-कक्ष में जाकर मौन मुख बैठ गई। न वह स्वस्थ रह सकी, न रुदन कर सकी और न कोई मार्ग ही निश्चित कर सकी। विलास की लालसा, सत्ता की आकांक्षा और वैराग्य का मोह, यह तीनो उसे दूर से प्रणाम करने लगे; जैसे-वैतरणी पार करके जा रहे हों। वह सजल नयनों से लेट गई—न उनको बुला सकी और न उनके पीछे

वैतरणी पार कर सकी।

मृत्यु की इच्छा हुई; परन्तु यमराज को निमन्त्रण देने का साहस न हुआ। तो भी तैलप की अपेक्षा उसे यमराज की शरण लेना ही अधिक पसन्द था।

इसी समय तैलप के आने का पद-रव सुनाई पड़ा, वह काँप-सी गई; जैसे-प्याले मे अभी कुछ विष और शेष रहा गया हो। उसमें स्वस्थ होने की शक्ति न थी—भेट करने का आत्माभिमान न था। वह ज्यों की-त्यों—गिरी हुई दीवार के ढेर की तरह, निराधार हो कर बैठ रही।

तैलप आया। उसने मृणाल के विषय की सब बातें मालूम करली थीं। समय-समय पर मुञ्ज के साथ उसका मिलन, अकलंक से कहा हुआ समाचार और लक्ष्मीदेवी का व्यङ्ग—इन सबसे उसे विश्वास होगया था कि मृणालवती ने ही विषय-लालसा मे पड़कर मुञ्ज को छुड़ाने का कपट-जाल खड़ा किया था। इस विचार से उसकी व्याकुलता का पार न रहा। मृणाल वैराग्य त्यागकर विषय-वासना मे लिप्त हो जाय, मुञ्ज को भगाने मे सम्मिलित हो; अपराधी भाग जायँ, जाते-जाते अकलङ्क को पराजित कर जायँ; भील्लम जैसा शूरवीर योद्धा, उसे छोड़ कर स्वातन्त्र्य का झण्डा फहराये—इन सब तले-ऊपर के आघातों से वह व्याकुल हुआ। क्षण भर मे मृणाल की बुद्धि का और भील्लम की भुजाओं का सहारा जाता रहा, और भील्लम तथा भोज जैसे प्रतापी शत्रु उत्पन्न होगये। मृणाल के स्खलन का कलंक भी उसके सिर लगा। इन सब बातों से वह घबरा उठा। विजय के शिखर से, इस गहरे

खंदक मे गिरना, उस बेचारे के लिए दुःसह हो जाय, तो इसमें आश्चर्य्य की बात ही क्या है ।

परन्तु इस आकुलता या घबराहट से निकलने और इस टूटे हुए दुर्ग को फिर से बनाने की उसमें शक्ति न थी। इस समय वह क्रोध और द्वेष का दास बन गया था—और इन दोनो का केन्द्र-स्थान मुञ्ज तथा मृणाल को बनना पड़ा ।

वह आया, और थोड़ी देर तक निःशब्द तिरस्कार के साथ मृणाल को देखता रहा । उसके छोटे-छोटे नेत्रों में अनिर्वचनीय द्वेष था; होठों पर भयंकर तिरस्कार । हृदय इस द्वेष और तिरस्कार से किसी को भस्म करने के लिए तिलमिला रहा था ।

उसने क्रूर और शान्त स्वर मे कहा—"क्यो, तैलङ्गण की राजमाता ! अवन्तिका कितनी दूर है ?"

व्याध-द्वारा घेरी हुई हरिणी के-से निराशा-पूर्ण नेत्रों से मृणाल देखती रही । उसे सूझ न पड़ा कि क्या उत्तर दे । तैलप ने आगे कहा—

"कुलाङ्गार ! इससे तो उत्पन्न होते ही मर जाना भला था । निष्कलंक तपस्विनी !" यह कहकर तैलप खिलखिला कर हँस पड़ा । उसने फिर कहा—"क्या तुम्हारा वैराग्य और क्या तुम्हारी नीति ! ऐसा करके तो तैलङ्गण की वाराङ्गनाएँ भी बेचारी लज्जा से मर जातीं !"

मृणाल ने ऊपर देखा । उसके स्फीत नेत्रों में निराशा झलक रही थी । वह तैलप के शब्दों का अर्थ समझने का प्रयत्न करने लगी ।

तैलप तिरस्कार से हँसकर बोला—"तुमको तैलङ्गण में और कोई न मिला कि मुञ्ज पर मोहित होगईं ?" तैलप के इन शब्दो मे तलवार की-सी तेज धार थी, और वह कसाई के समान क्रूरता से मृणाल पर आघात कर रहा था।

जिस प्रकार मरता हुआ प्राणी भी व्यर्थ ही किये हुए प्रहार की क्रूरता से क्रोध को शान्त नहीं कर सकता, उसी प्रकार असहाय अवस्था से उन्मादिनी बनी हुई मृणाल मे भी क्रोध के अंकुर प्रस्फुटित होगये। उसने सर्वस्व त्याग दिया था; परन्तु मुञ्ज के प्रति उसका मोह ज्यो-का-त्यों बना हुआ था। अपने प्रति दुर्व्यवहार की उसे परवा न थी; परन्तु मुञ्ज—उसके हृदय मे रमी हुई एक मात्र मूर्त्ति—का तनिक-सा अपमान भी उसे शूल-सा प्रतीत हुआ। वह तैलप के सामने देखती रही और क्षणभर ठहर कर बोली—

"तैलंगण ही क्या, सारे संसार में उसकी जोड़ का मनुष्य कोई बतला सकता है ?"

तैलप के नेत्र भयंकर होगये। होंठ काँप उठे। क्रोध और द्वेष पर छाये हुए तिरस्कार का आवरण दूर होगया। उसने नेत्र विस्फारित कर के पूछा—

"निर्लज्जे! मेरे समक्ष भी यह कहते लज्जा नहीं आती ?"

मृणाल ने खिन्नता से कहा—"लज्जा, लज्जा किस बात की ?"

उसका प्रभावशाली स्वभाव धीरे-धीरे अपना साम्राज्य स्थापित करने लगा। उसने फिर कहा—"तूने नहीं समझा

मेरे वैराग्य और मोह को ? मुझ की हँसी करता है ? मूर्ख ! तुझ जैसे दस हज़ार तैलप एकत्र हो जायँ, तो भी उसे नहीं पा सकते।" कह कर तैलप के सामने वह खड़ी होगई।

"धन्य हो तपस्विनी ! धन्य हो तैलंगण की राजमाता ! तुम्हारे मुख से ये शब्द कैसे शोभा दे रहे हैं !"

"शोभा दें, या न दें; मुझे इसकी परवा नहीं। मेरे हाथ अब नीचे गिर गये हैं। अपना जीवन मैंने अपने हाथों नष्ट कर डाला है। मेरी मृत्यु पर कोई ठण्डी सांस लेने वाला नहीं है। मैं एक समय उग्र तपस्विनी थी, तैलंगण की राज्य-विधात्री थी; और इस समय सब मुझे कुलटा कहकर पुकारेंगे—मेरे नाम पर थूकेंगे—"

मृणाल ने एक दीर्घ निःश्वास लिया। तैलप हँस पड़ा।

"—तो भी तापसी बनकर मैं जितना गर्व करती थी, तेरी बहन और राज्य की विधात्री होकर जितना गर्व करती थी—उतना ही गर्व—उससे अधिक गर्व पृथ्वीवल्लभ की वल्लभा होकर करती हूँ।"

"हाः—हाः—हाः !" तैलप खिलखिलाकर हँस पड़ा। "तब तू भी देख ले। मैंने तुझे अभी तक माता के समान—अपने देवता के समान—माना है। अब तुझे भी मैं पूरा-पूरा स्वाद चखाता हूँ।"

मृणाल ने दुःख-पूर्ण स्वर में कहा—"तू क्या स्वाद चखायगा ? मुझ अभागिनी को तो विधि ने ही स्वाद चखाने में कोई कोर-कसर नहीं की।"

"पहले तेरे पृथ्वीवल्लभ को स्वाद चखाता हूँ, और फिर तुझे।"

"वह तो सदा सुख का ही स्वाद चखता है। उसका तू क्या कर सकेगा ?"

"अभी तुझे मेरे प्रताप का भान नहीं है।"

इस समय मृणाल को तिरस्कार-पूर्वक हँसने का अवसर मिला। वह हँस पड़ी।

तैलप तनिक क्षुब्ध-सा होगया। वह मौन धारण किये हुए खिड़की के पास गया और खिड़की खोलकर बोला—"देख—"

मृणाल ने आगे बढ़कर देखा। नीचे गली मे एक घर के आगे मुञ्ज खड़ा था। उसके हाथों और पैरों मे बेड़ियाँ पड़ी थीं। हाथ में भिक्षा-पात्र था। उसके पीछे-पीछे दो खड्गधारी सैनिक चल रहे थे।

"तेरा पृथ्वीवल्लभ सात दिन तक घर-घर भीख मांग कर खायगा, और पश्चात्—"

श्वास रोक कर मृणाल ने पूछा—"पश्चात् ?"

"पश्चात्—जहाँ तू उससे न मिल सकेगी—उस यम-सदन की हवा खायगा।"

"कैसे समझ लिया ?"

इस समय, ऐसी दया-जनक अवस्था में भी मुञ्ज ज्यों-का-त्यों निर्द्वन्द्व खड़ा था। उसके मुख पर आनन्द और शान्ति रमण कर रही थी! उसके नेत्र कभी सैनिकों के साथ, और कभी वार्तालाप करते हुए मार्ग मे चलनेवालों के साथ

लग रहे थे। उसका गौरव और स्वस्थता तनिक भी भंग न हुई थी। हाथों में बेड़ियाँ और भिक्षा-पात्र राज-चिन्ह के-से प्रतीत हो रहे थे।

जिस घर के सामने मुञ्ज खड़ा था, उसमे से एक युवती निकली और मुञ्ज तथा सैनिको को देख, घबरा कर पीछे हट गई।

स्नेह और आदर-पूर्ण दृष्टिपात करके मुञ्ज ने हँसते हुए कहा—"सुन्दरी ! क्यो घबरा रही हो ?"

क्षुब्ध होकर वह स्त्री बोली—"महाराज !—"

"इससे भला और क्या होगा ? ऐसा न होता, तो मान्यखेट के नागरिकों को पृथ्वीवल्लभ का परिचय कैसे मिलता ? घर में कुछ है ? यदि हो, तो कुछ लाओ।"

"महाराज ! इस समय—"

"जो कुछ भी हो, दे दो। तैलप के राज-भवन के पकवानो से तो बढ़ कर ही होगा। मैं भी देखूँ, कि पाक-विद्या में कौन निपुण है—अवन्तिका या मान्यखेट ?"

वह स्त्री तुरन्त ही घर के अन्दर गई और कुछ खाद्य-पदार्थ लाकर मुञ्ज के भिक्षा-पात्र में डाल दिया।

मुंज ने हास्य-युक्त नयनों से कहा—"सुन्दरी ! इतना स्मरण रखना—"यह कहकर उसने एक संस्कृत श्लोक सुनाया।

वह स्त्री, अर्थ न समझने के कारण, देखती रह गई।

मुञ्ज हँसकर बोला—"हाँ, मै भूल गया। यह अवन्तिका नहीं है। देखो, चन्द्रलेखा ! इन तुम्हारे पुष्प-माला के से

सुकुमार पाश से प्रणयी छूटना चाहे, तो उसे मूढ़ समझकर तुम उसका तिरस्कार करना; क्योंकि पृथ्वीवल्लभ भी तुम्हारे करों को देखकर बड़े भ्रम मे पड गया कि यह कर है या कमल नाल, और वह क्षणभर के लिये यह देखना भूल गया कि भिक्षा-पात्र में क्या डाला है।"

वह स्त्री लज्जित होकर नीचे देखने लगी। उसके मुख पर हास्य झलकने लगा। मुंज भी आनन्द से हँस रहा था।

मुञ्ज दूसरे घर की ओर घूमा, तो तैलप ने मृणाल से कहा—"यह तेरा पृथ्वीवल्लभ है, देखा ?"

मृणाल ने तिरस्कार से कहा—"मैंने तो कभी से देख रखा है। अब तू देख ले, नहीं तो रह जायगा। वास्तव मे पृथ्वीवल्लभ यही है। तू चाहे सिर पटककर मर जाय, तो भी पृथ्वीवल्लभ नहीं हो सकेगा।"

इतना कहकर वह खिड़की से हट गई।

होठ चबाकर तैलप भी वहाँ से चला गया।

——

तेतीसवाँ प्रकरण

पृथ्वीवल्लभ क्यों घबराया ?

सात दिन तक भिक्षा माँगकर पृथ्वीवल्लभ ने दिग्विजय किया। सारा नगर उसके पीछे उन्मत्त होगया। नगर का प्रत्येक स्त्री-पुरुष तैलप को शाप देने लगा। प्रत्येक प्राणी उसके बचाने की चेष्टा करने लगा—ईश्वर से प्रार्थना करने लगा।

परन्तु तैलप इस समय किसी के धोखे में आ जाने वाला नहीं था। मृणाल पर, मुञ्ज पर और मुञ्ज का पक्ष करने वालो पर कड़ी दृष्टि रक्खी जाती और उनके विषय का एक-एक शब्द उसके कानो मे पहुँच जाता। धीरे धीरे तैलप को मालव राज के चमत्कार-पूर्ण व्यक्तित्व और अपनी बिगड़ी हुई बाजी का चेत होने लगा। और ज्यो-ज्यो चेत होने लगा, त्यो-त्यो वह मुञ्ज को समाप्त कर डालने का संकल्प दृढ़ करता गया।

ढिंढोरा पिटवा कर उसने समस्त साम्राज्य मे प्रकट कर दिया कि आज से सातवें दिन, प्रात:काल, पापी मुंज को, मृणालवती से अन्तिम भिक्षा माँग लेने पर हाथी के पैरों तले कुचलवा दिया जायगा।

इस विजयोत्सव में सम्मिलित होने के लिये उसने सारे देश को निमंत्रित किया।

सारा देश चकित होगया—स्तंभित होगया। सहस्रो हृदयों से रोष और तिरस्कार के उद्गार निकले, सहस्रों नयनों से अश्रुपात हुआ और सहस्रों निःश्वासों से इस अन्याय के प्रति मूक शाप निकल पड़ा।

परन्तु तैलप का संकल्प अटल था—निश्चल था। सातवें दिन सारा देश राज-भवन के आगे मैदान में एकत्र हुआ। चारों ओर—पृथ्वी पर, खिड़कियों में, छतों पर लोगों के ठट्ठ जमा हुए।

राजभवन के चबूतरे पर; मृणालवती म्लान और गम्भीर मुख से खड़ी हुई थी। उसके विद्रूप मुख पर शोक के सौन्दर्य की छाया पड़ गई थी। उसके नेत्र अश्रु-पात कर-करके लाल हो गये थे। बार-बार उसके हृदय से निःश्वास निकल रहा था। किसी समय लोग जिसे देखकर भय खाते थे, आज उसे दयनीय दृष्टि से देख रहे थे। किसी भी स्त्री-पुरुष के मन मे उसके आचरण की आलोचना करने की कठोरता न थी।

मृणाल से भिक्षा मँगवा कर मुञ्ज को क्षुद्रता का कठोर से कठोर अनुभव कराना ही तैलप का विचार था। मृणाल यह बात समझ गई और पहले उसने इस बात को अस्वीकार किया; परन्तु जब तैलप ने एक पल के लिए भी मुञ्ज से मिलने को इन्कार कर दिया, तब मृणाल विवश होगई। अन्तिम समय भी मुञ्ज से न मिलना वह किसी प्रकार नहीं सहन कर सकती थी। उसने स्वीकार कर लिया। उसके-से कठोर हृदय के लिए भी यह आघात असह्य-सा होगया था।

मृणाल के निकट ही महारानी जक्कलदेवी और कई सहेलियाँ खड़ी थीं। महारानी का मुख भी फीका और चिन्तापूर्ण था। सामने तैलप खड़ा था। उसके मुख पर क्रूरता और निश्चलता थी। नेत्रों में द्वेष और विजय का उल्लास। वह अपनी कट्टर शत्रु और माता समान बहन का हृदय-भेदक अन्तिम मिलन देखने के लिए—मुञ्ज की और उसकी वेदना देखकर प्रसन्न होने के लिए—खड़ा-खड़ा आतुर हो रहा था।

बीच के खुले हुए स्थान मे एक मदोन्मत्त गजराज घूम रहा था। उसे मद्य-पान कराके मत्त कर दिया गया था। उस पर बैठा हुआ एक कुशल, अनुभवी और चालाक महावत उसे बड़ी कठिनता से सँभाल रहा था। गजराज अपने लाल-लाल नेत्रो से नगर-निवासियो को देख रहा था और बार बार सूँड़ उठा कर, चिंघाड़कर अपना क्रोध प्रकट कर रहा था। मुञ्ज कारागार से निकल कर आया। जन-समूह मे शान्ति छागई और सब टकटकी लगाकर देखने लगे।

बिना घबराये और बिना किसी के कहे, वह वहाँ आकर खड़ा हो गया, जहाँ मृणाल खड़ी थी। और, हँस पड़ा। उसका हास्य, इस समय भी सदा की भांति मोहक था। वह बोला—

"क्यों मृणालवती!"

उसके स्वर में ऐसी ध्वनि थी मानों अपनी प्रियतमा से दीर्घकाल के पश्चात् मिला हो।

मृणाल पहले तो न हँसी; पर तुरन्त ही मुञ्ज के मोहक हास्य और स्वर के जादू ने उस पर अपना प्रभाव जमा लिया। उसके धीर और म्लान वदन पर मन्द-मधुर स्मित दिखलाई पड़ने लगा। नयन स्नेहाश्रुओ से भींग गये। दोनो की दृष्टियाँ तेजस्विता के साथ परस्पर आलिंगन करने लगीं। समस्त जन-समूह श्वास को रोककर यह देखने लगा।

"अब कौन सी वस्तु का दान करोगी? जो कुछ तुम्हारे पास था, उसे तो तुम पहले ही दान कर चुकी!" रसिक प्रणयी एकान्त मे जैसी मधुरता से पूछता है, पृथ्वीवल्लभ ने उसी प्रकार पूछा।

मुञ्ज के शब्दो को सुन कर मृणाल पागल बन गई। प्रणय मारुत के भीषण झकोरे से उसके रोम रोम खड़े हो गये। वह दुःख, समय और स्थान को भूल गई। मोहान्ध नेत्रो से केवल अपने हृदय-नाथ की रसिक मूर्ति को ही देखती रही।

"सुन्दरी, घबराने की आवश्यकता नहीं। यह संसार तो भ्रम और अज्ञान में फँसा है और फँसा ही रहेगा। वह चाहे जो कहे, पर तुमने अपना जीवन सरस बना लिया है।"

मृणाल को चेत न रहा। तैलप को, जन-समूह को और लोक-लज्जा को—सबको वह भूल गई। भिक्षा देने का पात्र उसने हाथ से फेंक दिया और दौड़कर वह मुञ्ज के बेड़ी से जकड़े हुए पदो मे लिपट गई।

"क्षमा, क्षमा करो महाराज! पृथ्वीवल्लभ! मैंने तुम्हे जीते जी मार डाला।" इतना कहकर मृणाल ने मुञ्ज के पदो

की रज अपने मस्तक पर चढ़ाई

"तुमने ? मेरी मृत्यु तो जन्म धारण के समय ही निश्चित हो चुकी थी। इसमें तुम क्या कर सकती हो। उठो।"

यह देख कर तैलप चबूतरे पर से कूदा और मृणाल का हाथ पकड़ कर उसे अलग किया। जन-समूह और सैनिकों के नेत्रों से अश्रु टपकने लगे।

"तैलप ! मेरा बदला इस बेचारी से क्यों ले रहे हो ?"

"चुप होजा चाण्डाल !"

मुञ्ज ने हँसते हुए कहा—"मैं चुप क्यों हो जाऊँ, चुप हो जाने का अवसर तो तेरे लिए है। इस समय तेरा दिग्विजय समाप्त होगया।"

क्रोध के आवेश में तैलप को कुछ सूझ न पड़ा कि इसका क्या उत्तर दे। वह मौन होगया।

मुञ्ज ने अपना तेजस्वी मुख-मण्डल चारों ओर घुमाया; हँसा और तीव्रस्वर में कहा—

"मूर्ख ! तुझे अपने नेत्रों से कुछ दिखलाई पड़ता है ? अवन्तिका के सिंहासन पर, सिंह के समान, मेरा भोज गर्जन कर रहा है और स्यून-देश में भील्लमराज मेरा बदला लेने के लिए तिलमिला रहा है। तेरी बहिन और तेरी प्रजा भी तेरी नहीं रही—मेरी होगई है। किसकी विजय हुई, तेरी या मेरी ?"

"मत्त गजराज अभी तुझे विजय दिखलायगा।" यह कह कर तैलप मृणाल को चबूतरे पर बिठला कर, आगे आगया।

मुञ्ज खिलखिलाकर हँस पड़ा। बोला—

"इसमें मेरी विजय है या तेरी ? तू मुझे नत करना चाहता था और मैं मस्तक ऊँचा किये हुए ही अपना जीवन समाप्त करूँगा। तू नीति का आडम्बर रच रहा था और अब उसे त्याग कर राज-हत्या का पाप बटोर रहा है ! कौन है विजेता, तू या मैं ?"

मुञ्ज का तिरस्कार-पूर्ण गर्जन आकाश में गूँज उठा।

तैलप ने आकुल होकर होठ चबा लिये। उसके नेत्रों से विषाक्त किरणें फूट पड़ीं।

"सैनिको ! पकड़ो इसे।"

"किसलिए ? मैं स्वतः जाता हूँ।" यह कह कर वह गजेन्द्र की भांति गौरव-भरे धीर पद उठाता हुआ हाथी की ओर चला।

सब आँखें फाड़ कर देखते रहे। सबके श्वास रुद्ध होगये। शान्ति से, आगे मुञ्ज जा रहा था और पीछे तैलप और उसके कुछ सैनिक थे।

हाथी के निकट पहुँच कर मुञ्ज खड़ा होगया और तैलप की आज्ञा से उसकी हथकड़ी बेड़ियाँ खोल दी गईं।

हथकड़ी-बेड़ियों के खुलते ही मुञ्ज तनकर खड़ा हो गया। अपने मस्तक पर लहराते हुए बालों को उसने पीछे किया और विशाल भाल से उद्दीप्त मुख-मण्डल जन-समूह और मृणाल की ओर घुमाया। उसके नेत्रों मे निर्भयता थी, पृथ्वी का वल्लभत्व-सूचक तेज था। होठों पर मधुर और गौरव-पूर्ण हास्य झलक रहा था।

जन-समूह का हृदय काँप उठा। अनेक स्त्री-पुरुष रोने लगे। मृणाल उन्मादिनी की भांति देखती रही। सैनिक होंठ से होंठ दबाकर कर्तव्य-परायण-से हो रहे।

मुञ्ज ने बड़े शान्त स्वर मे कहा—"देख, तैलप! देख, पृथ्वोवल्लभ की मृत्यु अन्त मे पृथ्वीवल्लभ को शोभा देने वाले ही रूप में निश्चित हुई!"

तैलप क्रूरता का श्वास लेता हुआ निश्चल मुख से खड़ा था। उसके हृदय में बड़ी निराशा छा गई थी। उसे प्रतीत हो रहा था कि मरते-मरते भी मुञ्ज ने अपना विजय-ध्वज फहरा दिया। वह प्रतीक्षा कर रहा था कि मुञ्ज तनिक खिन्न हो जाय, उसका वल्लभत्व ज़रा अदृष्ट हो जाय।

"चल, आगे बढ़, या सैनिकों को बुलाऊँ।"

मुञ्ज ने एक तिरस्कार-पूर्ण दृष्टि से तैलप को देखा और वह आगे बढ़कर हाथी की सूँड़ से दो हाथ दूर पर खड़ा होगया।

आगे बढ़ने से वह हिचकता हुआ प्रतीत हुआ।

तैलप को इच्छित अवसर मिल गया। बोला—"क्यों, घबरा गया?"

"पृथ्वीवल्लभ घबरा जाय, तो पृथ्वी रसातल को चली जाय। कायर, मैं तो तनिक विचार करने लगा था।"

"क्या?"

मुंज ने गर्व से मस्तक उठाया। उसके नयन, स्नेह के जल से सिक्त होगये। उसने कहा—

"यही कि बेचारी सरस्वती की क्या दशा होगी ? क्यो कि—

लक्ष्मीर्यास्यति गोविन्दे विरश्रीर्वीरवेश्मनि ।
गते मुंजे यशःपुंजे निरावलम्बा सरस्वती ॥*"

इतना कहकर अनिवार्य तिरस्कार से तैलप की ओर पीठ करके वह हाथी की ओर घूमा।

"गजराज, राजो में गज के समान पृथ्वीवल्लभ तेरे निकट आया है।"

हाथी ने सूँड़ हिलाई और वह तनिक विचार करते हुए, उसकी सूँड़ को सहलाने लगा। जैसे, उसके साथ खेल रहा हो। अन्त में बड़ी शान्ति से वह उसकी सूँड़ से लिपट गया। महावत ने अंकुश लगाया। हाथी ने सूँड़ में लपेट कर मुञ्ज को ऊपर उठा लिया।

हाथी ने सूँड़ मे दबाये हुए मुञ्ज को अनेक बार नीचे-ऊपर किया, और पृथ्वीवल्लभ, हँसता हुआ, प्रभावशाली नेत्रो से गर्व प्रदर्शित करता हुआ कालीनाग के नथैया श्री कृष्ण के समान, लोगो की सजल और निश्चल आँखो के आगे खेलने लगा। गजेन्द्र ने चिंघाड़ मारी और सूँड़ को एक झोंका और दिया। पृथ्वीवल्लभ का विजय-घोष गूँज उठा—

"जय महाकाल !"

× × ×

---

*लक्ष्मी तो गोविन्द के पास चली जायँगी, कीर्ति वीरों के पास, परन्तु यश के पुञ्ज रूप मुंजराज के जाने से बेचारी सरस्वती निरावलम्बा हो जायगी।

जन-समूह मे हाहाकार मच गया। मृणालवती की गहरी चीख आकाश में प्रतिध्वनित होगई। मुञ्ज हाथी के पैरो तले अदृष्ट होगया। हाथी ने पैर रक्खा—भार दिया। हड्डियों के चुर-मुर होने का शब्द सुन पड़ा और हाथी ने पैर उठा लिया।

पृथ्वीवल्लभ का कुचला हुआ शरीर, रोटी बना हुआ, पृथ्वी पर पड़ा रहा।

साहित्य-मणि-माला

हिन्दी मे आज तक ऐसी सुन्दर और सस्ती पुस्तक-माला नहीं निकली थी। इस माला में ऐसी कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं की जाती जो वहुत ऊँचे दरजे की न हो। प्रत्येक पुस्तक की नेत्र रंजक जिल्द बँधी होती है, पृष्ठ संख्या ८० से लेकर २०० तक और मूल्य सिर्फ दस आने! बारह पुस्तकों के ७॥) भेजकर स्थायी-ग्राहक बनिए, आपको पोस्टेज का खर्च भी न देना पड़ेगा।

१. झङ्कार—श्रीमैथिलीशरण जी गुप्त की चुनी हुई गीति-कविताओं का संग्रह।

२. अंकुर—श्री कृष्णानन्द गुप्त की एक से एक अच्छी कहानियों का संग्रह।

३. स्वप्न वासवदत्ता (नाटक)—महाकवि भास की अनूठी रचना।

४. स्वास्थ्य-संलाप—इस पुस्तक में कथोपकथन के द्वारा सरलता पूर्वक स्वास्थ्य-संबन्धी सिद्धान्त समझाये गये हैं।

५. दूर्वा-दल—श्री सियारामशरण गुप्त की भावमयी सुन्दर कविताओं का संग्रह।

६. शेलकश (उपन्यास)—रशियन लेखक मैं० गोर्की की प्रसिद्ध रचना का अनुवाद।

७. पुरातत्त्व-प्रसङ्ग—इस पुस्तक में आचार्य पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी के भारतीय-संस्कृति सम्बन्धी पुरातत्त्व विषयक लेखों का संग्रह है।

८-९ बंजर-भूमि (उपन्यास)—सुप्रसिद्ध रशियन लेखक टर्गेनेस की अनूठी कृति "व्रिजिनस्वाइल" का हिन्दी अनुवाद। (प्रेस मे)